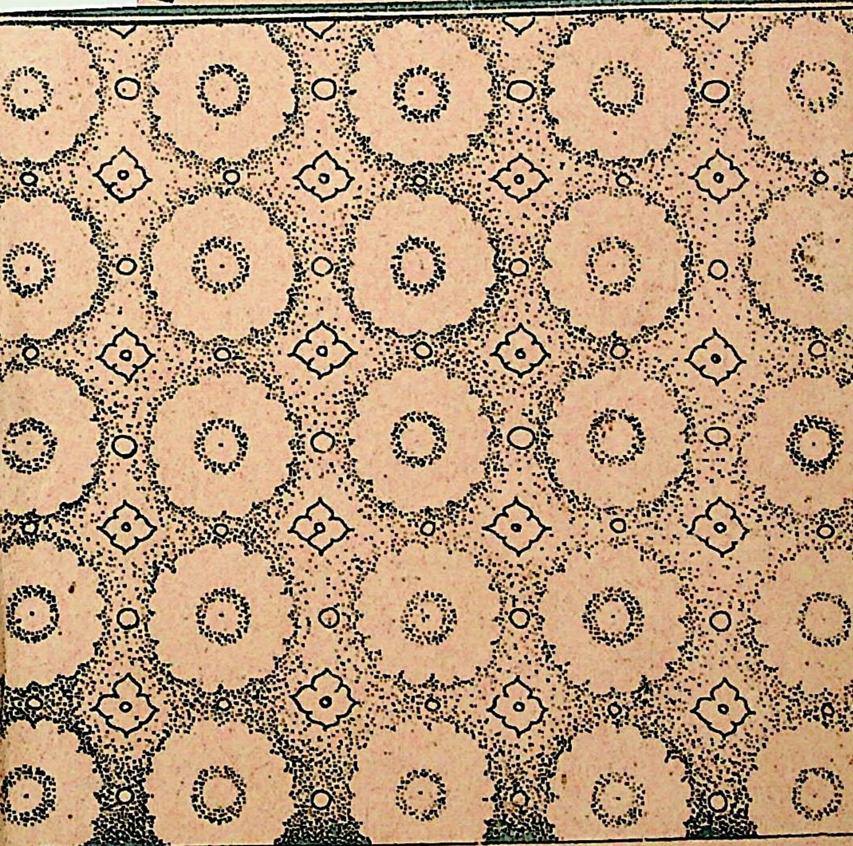
दिक वीर-गर्जना



रामनाथ वेदालङ्कार

विद्वानों की सम्मतियां

स्व० महात्मा श्री नारायण स्वामी जी—

संग्रह इतना उत्तम हुआ है कि मन्त्रों के पढ़ने से मनुष्य का हृदय वीरता के आवेश में आह्लादित हो उठता है।

स्वामी श्री स्वतन्त्रानन्द जी—

पुस्तक प्रत्येक आर्यवीर के कण्ठस्थ करने योग्य है। इसका प्रचार विस्तार से होना चाहिये।

स्वामी श्री वेदानन्द जी तीर्थ—

यह गर्जना मृतकों में प्राण संचार करने वाली है।

आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ—

इन मन्त्रों के पढ़ने से निराश हृदय में भी आशा का संचार होने लगता है।

प० श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार, सम्पादक 'कल्याण'—

यह पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। हिन्दू जनता के लिये अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक के संग्रह और मनन करने योग्य है।

देशभक्त कुँवर चाँद करण जी शारदा—

हिन्दू जाति में वीरता के भाव फूँकने के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

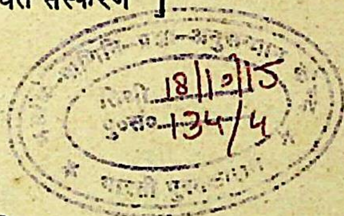
डा. सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार, एम. ए. एल. टी. डी. लिट्—

आपने इस पुस्तक की रचना करके हिन्दू जाति और वैदिक धर्मावलम्बियों का महान् उपकार किया है।

॥ ओ३म् ॥

वैदिक वीर-गर्जना

[परिवर्धित संस्करण]



लेखक

पं० रामनाथ वेदालङ्कार

(उपाध्याय—गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी-हरिद्वार)

प्रकाशक :—

लाजपत राय आर्य

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

३/३६६, दयानन्द नगर, गाजियाबाद (उ० प्र०) भारत

द्वितीय संस्करण=२०००

वि० सं० २००६

मूल्य

तीन रुपये पचास पैसे

मात्र

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्राप्त कुछ विशिष्ट प्रकाशनों की सूची

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक	मूल्य
			रु० पै०
१.	निर्णय के तट पर (शास्त्रार्थ सग्रह)	अमर स्वामी परिव्राजक	४०–००
२.	कुरान परिचय सम्पूर्ण	पं० देव प्रकाश	४०–००
३.	गोपथ ब्राह्मण भाष्य	पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी कृत भाष्य	४०–००
४.	वेदों की वर्णन शैलियां	पं० रामनाथ वेदालंकार	५०–००
५.	कौन कहता है द्रौपदी के पांच पति थे ?	अमर स्वामी परिव्राजक	७–००
६.	क्या रावण वध विजय दशमी को हुआ था ? (रामायण सम्वन्धी सभी भ्रमों का उत्तर)	" " "	३–००
७.	सन्ध्या के २ मन्त्रों की व्याख्या	अमर स्वामी परिव्राजक	–५०
८.	गीता और महर्षि दयानन्द	" " "	–५०
९.	अमर स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ	ठा० विक्रम सिंह, एम. ए.	१२–००
१०.	प्राचीन भारत में मन्दिरों की लूट एवं मूर्ति पूजा	पं० देव प्रकाश	१५–००

नोट :—विशेष जानकारी हेतू प्रकाशन से मुफ्त सूची पत्र प्राप्त करें।

—व्यवस्थापक

मुद्रक—
श्री ऊषा प्रिंटिंग प्रेस,
क्वींस रोड, देहली

विषय-सूची





पूर्व निवेदन

वैदिक महाकाव्य के जिन अमर गीतों को लेकर कुछ समय पूर्व मैं पाठकों की सेवा में उपस्थित हुआ था, उन्हें आज पुनः प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। ये गीत विजय के गीत हैं, जागृति देने वाले हैं, प्रसुप्त मनों में स्फूर्ति लाने वाले हैं, हृदय में वीरता की तरंगं उठाने वाले हैं। सृष्टि के आदि युग से भारत के आर्य नर-नारी इन गीतों से प्रेरणा पाते रहे हैं। इन्हीं गीतों को गा गा कर प्राचीन ऋषि-मुनि अपने जीवनों को उन्नति-पथ का अनुगामी बनाते रहे हैं; इन्हीं गीतों का गान करते हुए प्राचीन आर्य दिग्विजयी होते रहे हैं। आज पुनः इन गीतों के प्रचार की आवश्यकता है।

वेदों में युद्धसम्बन्धी अनेक रोमांचकारी वर्णन आते हैं, किन्तु इस पुस्तक का उद्देश्य वैदिक युद्ध-विद्या को दर्शाना नहीं है। इस में केवल उन वीरोचित मन्त्रों को स्थान दिया गया है जो सर्व-साधारण के मनों में वीरता की भावना को भरने वाले हैं। यह संसार एक समर-स्थली है। मनुष्य को बड़े २ संघर्षों में से होकर गुज़रना है। चारों तरफ विघ्न-बाधायें और शत्रु मुँह बाये खड़े हैं

और उसे हड़पना चाहते हैं। इधर आन्तरिक क्षेत्र में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि की पैशाची सेना मन पर आक्रमण करने को तैयार खड़ी है, तो उधर भयंकर व्याधियों की सेना शरीर पर आक्रमण करने का उपक्रम कर रही है। इधर सिंह-व्याघ्र-सर्प आदि भयानक जन्तु मनुष्य को अपना ग्रास बनाने के लिये तैयार हैं, तो उधर अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प आदि अनेक दैवी विपत्तियाँ उसे काल-कवलित करना चाह रही हैं। इधर धूर्त-वंचक-छली लोग मनुष्य को अपने चंगुल में फँसाने की चेष्टा कर रहे हैं, तो उधर अत्याचारी लोग उसकी गर्दन को अपनी तलवार का निशाना बनाने पर उतारू हो रहे हैं। इधर, उधर सब ओर शत्रु हैं। पग-पग पर विघ्न हैं, पग-पग पर बाधायें हैं, पग-पग पर नोकीले कंकड़ हैं, पग-पग पर चट्टानें हैं, पग-पग पर खाइयाँ हैं। इन सब को उसे पार करना है। जैसे नदी का प्रवाह तटों को गिराता हुआ, बांधों को तोड़ता हुआ, चट्टानों को लाँघता हुआ आगे बढ़ता जाता है, वैसे ही मनुष्य को सब विघ्नों को परास्त करते हुए जीवन-संग्राम में आगे ही आगे बढ़ना है। इसके लिये मन में प्रबल वीर-भावना की आवश्यकता है। उसी वीर-भावना को जागृत करने के उद्देश्य से यह संग्रह तैयार किया गया है।

मनुष्य के लिये वेद की प्रेरणा है कि ऐ नर! तू उठ, आगे बढ़, हिम्मत मत हार, आशावादी बन, और तेरे मार्ग में जो बाधक बन कर खड़े हों उन्हें तोड़ता-फोड़ता-कुचलता हुआ आगे बढ़ता जा। ऐसा प्रयत्न कर कि जगत् में 'आर्य-राज्य' हो, राक्षस का राज्य न हो। कभी तू आततायी राक्षस के अत्याचार को सहन

मत कर। "उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र ऋग्० ३-३०-१७" — हे वीर ! राक्षस को जड़ समेत उखाड़ फेंक। पर, कहीं हम वेद के इन वचनों का यह अर्थ न लगा लें कि वेद ने हमें पैशाची हिंसा की, लूट-पाट की, व्यर्थ उपद्रव मचा कर जगत् में अशान्ति फैलाने की अनुमति दे दी है। नहीं, वेद तो शान्ति के अग्रदूत बन कर हमारे सामने आते हैं। वेदों में तो भूमि-आकाश, सूर्य-चाँद-तारे, बादल-बिजली, वन-उपवन, तरु-लता, नदी-पर्वत आदि प्रकृति की एक-एक वस्तु के आगे शान्ति की पुकार मचाई गई है। इसी से हम समझ सकते हैं कि वेद शान्ति के लिये कितने अधिक आतुर हैं। पर शान्ति इसका नाम नहीं है कि अत्याचारी हम पर अत्याचार करने आये और हम कायरों की तरह उसे सह लें, हमारी आँखों के सामने निरीह भोली जनता पर क्रूर अत्याचारियों की तलवार का नग्न नृत्य हो रहा हो और हम आँख मीच कर बैठे रहें, राक्षस शत्रु हमारे सुन्दर साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा हो और हम चुप रहें। उस समय हमारा क्या कर्तव्य है यही इन मन्त्रों में वेद ने हमें बताया है।

पाठक देखेंगे कि स्थान २ पर इन मन्त्रों में राक्षसों के संहार का वर्णन है। जहाँ पाठक इससे बाह्य राक्षसों के विध्वंस का सन्देश लेंगे वहाँ साथ ही हृदय में उत्पन्न होने वाले आन्तरिक राक्षसों के संहार की भावना को भी जागृत करना चाहिये। बाहर की तरह अन्दर भी देवासुर-संग्राम चलता है। पापवृत्ति रूपी राक्षस देववृत्तियों पर विजय पाना चाहते हैं। मनुष्य का कर्तव्य है कि

अपने तीव्र संकल्प-बल के शस्त्रों से पूर्णतः इनका संहार कर दे। पाप, अन्याय, अत्याचार, अविद्या किसी कोटि के राक्षस को सहन मत करो; सभी राक्षसों को संसार से मिटा कर सुख-शान्ति के साम्राज्य को स्थिर करो; अपने आप को और जगत् को राक्षस-हीन करके देवतुल्य बनाओ — यह वेद का सन्देश है।

यों तो वेद वीरता के गीतों से भरे पड़े हैं, परन्तु उन सब को इस छोटी सी पुस्तिका में नहीं दिया जा सकता। चुन कर एकत्र किये हुए बहुत तीव्र भावना वाले ये कुछ गीत पाठकों को समर्पित हैं। मैंने प्रयत्न किया है कि इन में जो भावना भरी हुई है वह वैसी ही अनुवाद की भाषा में आ सके।

इस पुस्तिका में तीन रचनायें हैं—'वीर-भावना', 'उद्बोधन' और 'वीरता की तरंग में'। इनके विषय में यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। पाठक पढ़ कर ही उनका परिचय पा सकेंगे। यह इस पुस्तिका का द्वितीय संस्करण है। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे इस प्रयत्न का जनता ने अच्छा स्वागत किया है। इस संस्करण में २६ नये मन्त्र और दे दिये गये हैं। अथर्व. ८-३-१३ ८-६-१३ --ये तीन मन्त्र जो प्रथम संस्करण में थे, इस संस्करण में नहीं रखे गये। उन के स्थान पर उस भाव के और अच्छे मन्त्र दे दिये हैं। कहीं २ भाषा में भी कुछ परिष्कार किया गया है। अन्त में अकारादि क्रम से मन्त्र-सूची भी जोड़ दी गई है। इन सब दृष्टियों से इस संस्करण की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। आशा है यह संस्करण पाठकों को अधिक रुचिकर प्रतीत होगा।

अन्त में मैं मान्य भाई श्रीयुत हरिश्चन्द्र जी विद्यालङ्कार का हृदय से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने इस के प्रकाशन का सारा भार अपने ऊपर लेकर इसे जनता के सम्मुख लाने में सहयोग दिया है।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी,
कार्तिक पूर्णिमा, २००६

वेदप्रेमियों का सेवक,
रामनाथ वेदालङ्कार



वीर-भावना

कृतं मे दक्षिणे हस्ते,

जयो मे सव्य आहितः

"मेरे दायें हाथ में कर्म है; बायें हाथ में विजय रखी हुई है।"

अथर्व० ७.५२.८

आइये, यदि आप वैदिक वीरता की दुन्दुभि को सुनना चाहते हैं तो आइये। हृदय में वीर-भावों की तरंगें उठाने वाले वैदिक गीतों को यदि आप पढ़ना चाहते हैं तो आइये।

देखिये, वेद का सन्देश है कि वीर, पुरुषार्थी, कर्मण्य बनो; ओजस्वी, निर्भय, आशावादी बनो; मन्युमान् बनो; अत्याचार को न सहो; पिशाचों को कुचल डालो।

वेद की यह शिक्षा नहीं है कि तुम संसार में अकर्मण्य होकर, भाग्यवादी बनकर निष्क्रिय बैठे रहो। कर्मरहित भक्तिवाद और भाग्यवाद के प्रचार से भारत को बहुत हानि उठानी पड़ी है। अब आवश्यकता है कि वैदिक कर्मयोग और वैदिक वीरता का प्रचार हो।

समय २ पर भारतवर्ष में अनेक उच्चकोटि के धर्माचार्य जन्म लेते रहे हैं, जिन्होंने 'भक्ति' और 'अहिंसा' पर बहुत बल दिया है। किन्तु जिस सजीव 'भक्ति' और जिस सजीव अहिंसा का उन्होंने प्रचार किया उसे तो लोगों ने भुला दिया और उसके स्थान पर धीरे २ भक्ति के नाम से कर्महीन निर्जीव भक्ति और अहिंसा के नाम से कायरता का प्रचार होने लगा। यह भारत की अधोगति का एक बहुत बड़ा कारण रहा है। निःसन्देह भक्ति और अहिंसा हमारे धर्म के प्राण हैं। वेद में भी उच्चकोटि की भक्ति और अहिंसा की प्रेरणा है। किन्तु यह हमें अच्छी तरह

स्मरण रख लेना चाहिये कि भक्ति का अर्थ अकर्मण्यता और अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है।

वेद भक्ति के रंग में रंगे हुए हैं, पर वेद की भक्ति कर्महीन भक्ति नहीं है। वेद तो भक्ति के साथ २ कर्मवीर होने का उपदेश देते हैं।

१. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।

यजुः ४०-२

"मनुष्य को चाहिये कि वह कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे" यह वैदिक जीवन का आदर्श वाक्य है। वेद का भक्त अपने प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि—

२. इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि,
जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ऋग्. ७-३२-२६

"हे प्रभो! तू हमारी नस-नस में 'कर्म' को भर दे, हमें कर्म की शिक्षा दे, ताकि हम जीवन-संग्राम में जीवित-जागृत रहते हुए ज्योति को प्राप्त कर सकें।" सचमुच जिनके हाथ में 'कर्म' नहीं है उन्हें जीवन में ज्योति के दर्शन नहीं होते, उन्हें तो चारों ओर

---

१. (इह) इस संसार में (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वन् एव) करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्ष (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे।

२. (इन्द्र) हे प्रभो! (नः) हमारे लिए (क्रतुं) कर्म को (आभर) ला, (यथा) जैसे (पिता पुत्रेभ्यः) पिता पुत्रों के लिए।

अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। इन्हें अपने जीवन में सुनहले दिन देखने को नहीं मिलते, इन्हें तो सर्वत्र निराशा ही निराशा दृष्टिगोचर होती है। इसीलिये वेद का स्तोता अपने प्रभु से प्रार्थना कर रहा है कि तू मुझे "कर्म" से अनुप्राणित कर दे।

३. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।

ऋग्. १०-२५-१

"हे प्रभो! तू मेरे अन्दर उत्साह, बल और कर्म को फूँक दे।" वेद की ये कर्मयोग की प्रार्थनायें हमें सदा स्मरण रखनी चाहियें। साथ ही वेद का यह सन्देश भी हमारे सामने आ जाना चाहिए कि अन्याय और अत्याचार को नष्ट करने के लिए यदि हिंसा भी करनी पड़े तो वह हिंसा नहीं अपितु वीरता है। यदि कोई दुष्ट आततायी हम पर अत्याचार करने आता है तो हमारा कर्तव्य है कि वीरता के साथ उसका मुकाबला करें, कायर न बनें। इसीलिए वेद मनुष्य को जागृत करता हुआ कहता है—

(पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे जाने वाले प्रभो! (अस्मिन् यामनि) इस जीवन-संग्राम में (नः शिक्ष) हमें कर्म की शिक्षा दे, ताकि (जीवाः) जीवितों की तरह से रहते हुए हम (ज्योतिः अशीमहि) ज्योति को प्राप्त कर सकें।

३. हे प्रभो! (नः) हमारे अन्दर (भद्रं) श्रेष्ठ (मनः) उत्साह को (दक्षं) बल को (उत) और (क्रतुं) कर्म को (अपि वातय) फूँक दे।

४. प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्राः वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥

ऋग्. १०-१०३-१३

वीरो ! उठो, आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो । इन्द्र तुम्हें सुख दे । तुम्हारी भुजाओं में बल हो, जिससे कि तुम कभी पराजित न हो सको ।

५. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो, हनो वृत्रं जया अपो-
ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ऋग्. १-८०-३

हे वीर ! आगे बढ़, शत्रु पर वार कर, उसे परास्त कर दे । तेरे शस्त्र को कोई रोक नहीं सकता । शत्रु को झुका देने वाला बल तुझ में विद्यमान है । आततायी को मार दे । तेरी जिन प्रजाओं

---

४. (नरः) हे वीरो ! (प्र-इत) आगे बढ़ो, (जयत) विजय प्राप्त करो, (इन्द्रः) प्रभु (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे । (वः बाहवः) तुम्हारी भुजायें (उग्राः सन्तु) पराक्रमयुक्त हों, (यथा) ताकि, तुम (अनाधृष्याः) अपराजेय (असथ) हो जाओ ।

५. (प्र-इहि) आगे बढ़ (अभि-इहि) आक्रमण कर, (ते वज्रः) तेरा शस्त्र (न नियंसते) किसी से रोका नहीं जा सकता । (इन्द्र) ऐ वीर ! (ते शवः) तेरा बल (नृम्णं) शत्रु को झुका देने वाला है, (वृत्रं) दुष्ट को (हनः) मार दे, (अपः) प्रजाओं को (जयाः) जीत ले, (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) (स्वराज्य की आराधना करने वाला बन ।

को शत्रु ने पकड़ लिया है उन्हें जीत ले। स्वराज्य का आराधक बन।

६. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः॥

ऋग्. १-१५२-३

हे वीर! राक्षसों का संहार कर, हिंसकों को कुचल डाल, दुष्ट शत्रु की दाढ़ें तोड़ दे। जो तुझे दास बनाना चाहे उस वैरी के क्रोध को चूर कर दे।

७. स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः।

ऋग्. १-३९-२

---

६. (रक्षः विजहि) राक्षस को मार दे, (मृधः विजहि) हिंसकों को कुचल दे, (वृत्रस्य) दुष्ट शत्रु की (हनू) दाढ़ों को (विरुज) तोड़ डाल। (वृत्रहन् इन्द्र) हे दुष्ट शत्रुओं को विनष्ट कर देने का सामर्थ्य रखने वाले वीर! (अभिदासतः) तुझे दास बनाना चाहने वाले (अमित्रस्य) शत्रु के (मन्युम्) क्रोध को (विरुज) चूर-चूर कर दे।

७. (स्थिराः सन्तु) सुदृढ़ हों (वः आयुधा) तुम्हारे हथियार (पराणुदे) शत्रु को परे खदेड़ देने के लिये, (उत) और (वीळू) सुदृढ़ हों (प्रतिष्कभे) शत्रु के वार को रोकने के लिये। (युष्माकं) तुम्हारी (तविषी) सेना (पनीयसी) स्तुति के योग्य हो, (मायिनः मर्त्यस्य) मायावी मनुष्य की [सेना] (मा) ऐसी न हो सके।

हे वीरो ! सुदृढ़ हों तुम्हारे हथियार शत्रु को दूर भगा देने के लिए; सुदृढ़ हों शत्रु के वार को रोकने के लिए। तुम्हारी सेना, तुम्हारा संगठन, प्रशंसा के योग्य हो।

८. उत्तिष्ठत संनह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत॥

अथर्व॰ ११-१०-१

उठो वीरो, कमर कस लो, झण्डे हाथों में पकड़ लो। जो भुजंग हैं, लंपट हैं, पराये हैं, राक्षस हैं, वैरी हैं उन पर धावा बोल दो।

वेद के इन्हीं उद्बोधक वचनों को सुन कर वैदिक वीर गर्जता हुआ कह रहा है—

९. यदि नो गां हंसि, यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो, यथा नोऽसो अवीरहा॥

अथर्व. १-१६-४

---

८. (उदाराः) वीरो ! (उत्तिष्ठत) उठो, (संनह्यध्वम्) तैयार हो जाओ (केतुभिःसह) झण्डों के साथ। (सर्पाः) जो भुजंग हैं, लम्पट हैं (इतर-जनाः) जो इतर-जन हैं, पराये हैं, (रक्षांसि) जो राक्षस हैं (अमित्रान्) उन सब वैरियों पर (अनु धावत) धावा कर दो।

९. (यदि) यदि तू (नः गां हंसि) हमारी गाय को मारेगा, (यदि अश्वं) यदि घोड़े को [मारेगा], (यदि पूरुषम्) यदि पुरुष को [मारेगा] तो (तं त्वा) उस तुझ को (सीसेन) सीसे से—सीसे की गोली से (विध्यामः) बेध देंगे, (यथा) जिससे कि तू (नः अवीरहा असः) हमारे वीरों का घात न कर सके।

ओ आततायी ! तू मुझे निस्तेज, बुझा हुआ, मत समझना। मत समझना कि तू आकर मुझे सता लेगा और मैं चुपचाप सह लूँगा। देख, "यदि तू मेरी गाय को मारेगा, घोड़े को मारेगा, मेरे सम्बन्धी पुरुषों को मारेगा तो याद रख मैं तुझे सीसे की गोली से वेध दूँगा।"

१०. यो नो दिप्सदद्दिप्सतो, दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥

अथर्व. ४-३६-२

जो कोई व्यर्थ में किसी का वध न करने वाले, किन्तु दुष्टों का पकड़ २ कर वध करने वाले, हम लोगों को मारने का संकल्प करेगा उसे मैं जलती हुई आग की लपटों में झोंक दूँगा।

११. यो नः शपादशपतः, शपतो यश्च नः शपात् ।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं, तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥

अथर्व. ६-३७-३

---

१०. (यः) जो (अदिप्सतः नः) न सताने वाले हमको (दिप्सत्) सताना चाहता है (यः च) और जो (दिप्सतः) [दुर्जनों को] सताने वाले हमको (दिप्सति) सताना चाहता है (तम्) उसको (वैश्वानरस्य अग्नेः) वैश्वानर आग की (दंष्ट्रयोः) दाढ़ों में—ज्वालाओं में (अपि-दधामि) धर दूँगा।

११. (यः) जो (अशपतः नः) शाप न देने वाले हमको (शपात्) शाप देगा-कोसेगा (यः च) और जो (शपतः नः) [दुर्जनों को] शाप

जो कोई भले आदमियों को शाप न देने वाले, किन्तु दुर्जनों को जी भर कर शाप देने वाले हम लोगों को आकर कोसेगा, हमारे सामने आकर व्यर्थ गाली-गलौज बकेगा, उसे मैं मौत के आगे फेंक दूँगा, जैसे कुत्ते के आगे सूखी रोटी के टुकड़े।

१२. यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे।
एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आददे ॥

अथर्व. ७-१३-७

अरे, मुझे क्या तुमने साधारण मनुष्य समझा है। मैं तो सूर्य हूँ! सूर्य!! जैसे सूर्य उदित होकर सब नक्षत्रों के तेज को हर लेता है, वैसे ही मैं अपनी अपूर्व आभा के साथ जगत् में उदित होकर शत्रुता करने वाले सब स्त्री-पुरुषों के तेज को हर लूँगा।

१३. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माक-
मभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः।

देने वाले हमको (शपात्) शाप देगा-कोसेगा, (तम्) उसको (मृत्यवे) मौत के आगे (प्रत्यस्यामि) फेंक दूँगा (इव) जिस तरह (शुने) कुत्ते के आगे (अवक्षामं) सूखी (पेष्ट्रम्) पिट्ठी की रोटी।

१२. (यथा) जैसे (उद्यन् सूर्यः) उदित होता हुआ सूर्य (नक्षत्राणां) नक्षत्रों के (तेजांसि) तेजों को (आददे) हर लेता है (एवं) वैसे ही मैं (द्विषतां) शत्रुता करने वाले (स्त्रीणां च पुंसां च) स्त्रियों और पुरुषों के (वर्चः) तेज को (आददे) हर लूँगा।

१३. (अस्माकं) हमारी (जितं) विजय होगी, (अस्माकं)

इदमहमामुष्यायणस्याऽमुष्याः पुत्रस्य
वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामि
इदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥

अथर्व. १०-५-३६

निश्चय ही हमारी विजय होगी, हमारा अभ्युदय होगा, शत्रु की सेना को हम परास्त कर देंगे। मुझसे शत्रुता ठानने वाला जो अमुक पुरुष का बेटा और अमुक माँ का बेटा है, उसके वर्चस् को, तेज को, प्राण को, आयु को मैं हर लूँगा। उसे भूमि पर दे मारूँगा।

१४. अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य, दुर्हार्दो द्विषतः शिरः।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥

अथर्व. १०-६-१

हमारा (उद्भिन्नम्) अभ्युदय होगा, (विश्वाः) सब (अरातीः पृतनाः) शत्रु-सेनाओं को (अभ्यष्ठाम्) मैंने परास्त कर दिया है। (इदम् अहम्) यह मैं (आमुष्यायणस्य) अमुक पुरुष के बेटे के (अमुष्याः पुत्रस्य) अमुक माँ के बेटे के (वर्चः) वर्चस् को (तेजः) तेज को (प्राणम्) प्राण को (आयुः) आयु को (निवेष्टयामि) लपेट लूँगा, (इदम् एनम्) यह मैं इसको (अधराञ्चं पादयामि) नीचे भूमि पर दे मारूँगा।

१४. (अरातीयोः) शत्रुता का आचरण करने वाले (भ्रातृव्यस्य) वैरी का और (दुर्हार्दः) दुष्ट-हृदयी (द्विषतः) द्वेषी शत्रु का (शिरः) सिर (ओजसा) अपने पराक्रम से (अपिवृश्चामि) मैं काट डालूँगा।

मुझ से वैर करने वाले दुष्टहृदयी द्वेषी शत्रु का मैं सिर काट डालूँगा।

यह है अत्याचार व अत्याचारी के प्रति वेद की उग्र भावना। वेद चुपचाप अत्याचार को सह लेने की शिक्षा नहीं देता, अपितु अत्याचारी का सिर तोड़ डालने की हिम्मत बँधाता है। केवल वेद के पुरुषों में ही ऐसी वीर-भावना नहीं भरी है, किन्तु वेद की नारियाँ भी ऐसे ही वीर-भावों से ओतप्रोत हैं। एक नारी के उद्-गार देखिये—

१५. अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

ऋग्. १०-८६-८

अरे, यह घातक मुझे अबला समझे बैठा है? मैं अबला नहीं, वीरांगना हूँ, वीर की पत्नी हूँ। मौत से न डरने वाले वीर मेरे सखा हैं। मेरा पति संसार में अपनी तुल्यता नहीं रखता।

---

१५. (अयं शरारुः) यह घातक (माम्) मुझे (अवीराम् इव) अबला-सा (अभिमन्यते) समझता है; (उत अहम्) मैं तो (वीरिणी अस्मि) वीराङ्गना हूँ (इन्द्रपत्नी) वीर की पत्नी हूँ, (मरुत्सखा) मौत से न डरने वाले वीर मेरे सखा हैं। (इन्द्रः) मेरा वीर पति (विश्वस्मात्) सबसे (उत्तरः) बढ़ा-चढ़ा है।

१६. मम पुत्राः शत्रुहणो, ऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सञ्जया, पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥

ऋग्. १०-१५९-३

मेरे पुत्र शत्रु के छक्के छुड़ा देने वाले हैं, मेरी पुत्री अद्वितीय तेजस्विनी है। मेरे पति में उत्तम कीर्ति का निवास है। और मैं अपनी क्या बताऊँ ? कोई मेरी तरफ आँख उठा कर तो देखे, ऐसा परास्त होकर लौटेगा कि सदा याद रखेगा।

यह है वेद की नारी। अस्तु, आगे और सुनिये वैदिक वीरों की बहादुरी के गीत—

१७. सहे पिशाचान्त्सहसा--ऐषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि, सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥

अथर्व. ४-३६-४

---

१६. (मम पुत्राः) मेरे पुत्र (शत्रुहणः) शत्रुहन्ता हैं, (अथो) और (मे दुहिता) मेरी पुत्री (विराट्) विशेष तेजस्विनी है। (उत अहम्) और मैं भी (सञ्जया अस्मि) विजयिनी हूँ। (मे पत्यौ) मेरे पति में (उत्तमः श्लोकः) उत्तम कीर्ति का निवास है।

१७. (पिशाचान्) पिशाचों को (सहसा) अपने बल के ज़ोर से (सहे) मैं परास्त कर दूँगा, (एषाम्) इनकी (द्रविणं) धन-दौलत को (आ-ददे) छीन लूँगा। (सर्वान्) सब (दुरस्यतः) दुष्टता करने वालों को (हन्मि) मार दूँगा। (मे आकूतिः) यह मेरा संकल्प (समृध्यताम्) पूरा होवे।

पिशाचों को मैं अपनी पूरी शक्ति से दबा दूँगा, इनकी धन-दौलत छीन लूँगा। सब दुष्टता करने वालों को मार दूँगा, मेरा यह संकल्प पूरा होकर रहेगा।

१८. तपनो अस्मि पिशाचानां, व्याघ्रो गोमतामिव।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा, ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥

अथर्व. ४-३६-६

दुष्ट पिशाचों के बीच में मैं खलबली मचा देने वाला हूँ, जैसे बाघ आकर ग्वालों के बीचमें। मुझे सामने देखकर पिशाच अपनी सब चौकड़ी भूल जाते हैं, जैसे कुत्ते शेर को देख कर।

१९. न पिशाचैः सं शक्नोमि, न स्तेनैर्न वनर्गुभिः।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति, यमहं ग्राममाविशे ॥

अथर्व. ४-३६-७

---

१८ (पिशाचानाम्) पिशाचों का (तपनः) सन्तप्त कर डालने वाला (अस्मि) हूँ, (इव) जैसे (व्याघ्रः) बाघ (गोमताम्) ग्वालों का। (श्वानः) कुत्ते (सिंहम् इव) जैसे शेर को (दृष्ट्वा) देख कर, वसे ही (ते) वे पिशाच (दृष्ट्वा) मुझे देखकर (न्यञ्चनम्) चौकड़ी (न विन्दन्ते) नहीं ले पाते।

१९. (पिशाचैः) पिशाचों के साथ (न संशक्नोमि) मैं समझौता नहीं कर सकता, (न स्तेनैः) न चोरों के साथ, (न वनर्गुभिः) न डाका मार कर जंगल में जा छिपने वाले डाकुओं के साथ। (पिशाचाः) पिशाच (तस्मात्) वहाँ से (नश्यन्ति) भाग जाते हैं (यं ग्रामम्) जिस गाँव में (अहम् आविशे) मैं प्रविष्ट हो जाता हूँ।

पिशाचों के साथ, चोर-लुटेरों के साथ, डाकुओं के साथ मैं कभी समझौता नहीं कर सकता। जिस गाँव में, जिस नगर में, मैं जा पहुँचता हूँ, पिशाच वहाँ से भाग खड़े होते हैं।

२०. यं ग्राममाविशत, इदमुग्रं सहो मम।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति, न पापमुपजानते॥

अथर्व. ४-३६-८

सुन लो, जिस गाँव में भी यह मेरा दमनकारी बल पहुँच जाता है, पिशाच वहाँ से रफूचक्कर हो जाते हैं। मुझे देखते ही वे सब दुष्टता करना भूल जाते हैं।

वेद की वीर-गर्जना यहां समाप्त नहीं हो जाती। और देखिये--

२१. अक्ष्यौ च ते मुखं च ते, व्याघ्र जम्भयामसि।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान्॥

अथर्व. ४-३-३

ओ बाघ! तेरी आँख फोड़ देंगे, तेरा मुँह चीर देंगे, बीसों नख तोड़ डालेंगे। आ तो सही!

२०: (यं ग्रामम्) जिस गाँव में (इदं मम) यह मेरा (उग्रं सहः) उग्र बल (आविशते) पहुँच जाता है (तस्मात्) वहाँ से (पिशाचाः) पिशाच (नश्यन्ति) भाग जाते हैं; (पापम्) पाप का--दुष्टता का (न उपजानते) विचार भी नहीं कर पाते।

२१. (व्याघ्र) ओ बाघ! (अक्ष्यौ च ते) तेरी दोनों आँखों को (मुखं च ते) और तेरे मुँह को (आत्) और फिर (सर्वान्) सब (विंशतिम्) बीसों (नखान्) नाखूनों को (जम्भयामसि) कुचल देंगे।

२२. व्याघ्रं दत्वतां वयं, प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं, यातुधानमथो वृकम् ॥

अथर्व. ४-३-४

नोकीले दांतों वाले बाघ को हम जान से मार डालेंगे । चोर का, साँप का, परपीड़क राक्षस का, भेड़िये का हम वध कर देंगे ।

२३. यो अद्य स्तेन आयति, स संपिष्टो अपायति ।

अथर्व. ४-३-५

जो कोई चोर-लुटेरा हमारे पास आयेगा वह अच्छी तरह कुट-पिट कर लौटेगा ।

२४. अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥

अथर्व. ४-३६-१०

---

२२. (दत्वताम्) दांतों वाले प्राणियों में (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (व्यांघ्रम्) बाघ को (आत् उ) और (स्तेनम्) चोर को (अथो) और (अहिम्) साँप को, तथा (यातुधानम्) यातना देने वाले राक्षस को (अथो) और (वृकम्) भेड़िये को (जम्भयामसि) हम मार डालेंगे ।

२३. (यः) जो कोई (स्तेनः) चोर (अद्य) आज (आयति) हमारे पास आयेगा (स) वह (संपिष्टः) कुट-पिट कर, अच्छी तरह से मरम्मत किया जाकर (अपायति) वापिस लौटेगा ।

२४. (तम्) उसे (निर्ऋतिः) मृत्यु (अभिधत्ताम्) जकड़ ले

मौत उसे जकड़ लेगी, जैसे रस्सी घोड़े को। जो कोई मलिन चित्त वाला मुझ पर अपना क्रोध दिखायेगा वह मेरी पकड़ से नहीं छूट पायेगा।

२५. परेणैतु पथा वृकः, परमेणोत तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः, परेणाघायुरर्षतु॥

अथर्व. ४-३-२

ओ भेड़िये! मुझसे दूर रहना; ओ चोर! मुझसे दूर रहना; ओ साँप! मुझसे दूर रहना; ओ पापी! मुझ से दूर रहना। सावधान, क्यों मेरे पास आकर जान से हाथ धोना चाहते हो।

देखिये, वैदिक वीर कैसा साहसी, ओजस्वी, जीवित और निर्भय है! चाहे शेर, बाघ आदि कोई भयानक जन्तु हो, चाहे चोर-डाकू-लुटेरा हो, चाहे अन्य कोई आततायी या शत्रु हो, किसी से वह डरने वाला नहीं है। वह तो अपने प्राण को सम्बोधन कर के कहता है—

(इव) जैसे (अश्वम्) घोड़े को (अश्वाभिधान्या) रस्सी से। (यः मल्वः) जो मलिन चित्त वाला (मह्यं क्रुध्यति) मुझ पर क्रोध दिखायेगा (स उ) वह (पाशात्) पाश से (न मुच्यते) नहीं छूट पायेगा।

२५. (वृकः) भेड़िया (परेण पथा) परे के रास्ते से (एतु) चला जाये (उत) और (तस्करः) चोर भी (परमेण "पथा एतु") परे के रास्ते से चला जाये। (दत्वती रज्जुः) दाँतों से डसने वाली रस्सी अर्थात् साँप भी (परेण) परे से, और (अघायुः) पापेच्छु भी (परेण) परे से (ऋर्षतु) निकल जाये [अर्थात् ये सब मुझसे परे ही परे रहें, पास आने की हिम्मत न करें]।

२६. यथा द्यौश्च पृथिवी च, न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अथर्व. २-१५-१

ऐ मेरे प्राण ! तू किसी से डर मत। देख यह धरती क्या किसी से डरती है ? यह आकाश क्या किसी से डरता है ? तू भी मत डर, कोई तेरा बाल बाँका नहीं कर सकेगा।

२७. अश्मवर्म मेऽसि,
यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥

ऐ मेरे आत्मन् ! तू मेरा लोहे का कवच है। पूर्व दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा ।

"यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

दक्षिण दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा ।

---

२६. (यथा) जैसे (द्यौः च पृथिवी च) आसमान और धरती (न-बिभीतः) किसी से डरते नहीं (न रिष्यतः) न किसी से हिंसित होते हैं (एव) इसी तरह (मे प्राण) ऐ मेरे प्राण ! (मा बिभेः) मत डर।

२७. ऐ आत्मन् ! तू (मे) मेरा (अश्मवर्म) लोहे का कवच (असि)

"यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

पश्चिम दिशा से जो कोई मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

"यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

उत्तर दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

"यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

नीचे की दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

"यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

ऊपर की दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

है। (यः) जो कोई (अघायुः) पापेच्छु (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा से [(दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से, (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा से, (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा से, (ध्रुवाया दिशः) निचली दिशा से (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊपर की दिशा से, (दिशाम् अन्तर्देशेभ्यः) बीच की

"यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

बीच की दिशाओं से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा ।

अथर्व. ४-१०

२८. पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि ।

"पृथ्वी पर से उसे उखाड़ फेकेंगे जो हम से शत्रुता करता है"। पृथ्वी से भाग कर यदि वह अन्तरिक्ष में चला जाये तो—

अन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि ।

"अन्तरिक्ष से भी उसे निकाल फेकेंगे जो हमसे शत्रुता करता है"। अन्तरिक्ष से जान बचा कर यदि द्यु-लोक में भी चला जायेगा तो--

दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि ।

"द्यु-लोक से भी उसे निकाल बाहर करेंगे जो हमसे शत्रुता करता है"। द्यु-लोक से भाग कर यदि वह दिशाओं की शरण लेगा तो--

दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि ।

दिशाओं से] (मा अभिदासात्) मुझ पर घात करने आयेगा (एतत्) यह देखना (स) वह (ऋच्छात्) दूर जाकर पड़ेगा ।

२८. (पृथिव्याः) पृथ्वी से [(अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से, (दिवः) द्यु-लोक से (दिग्भ्यः) दिशाओं से] (तं निर्भजामः) उसे निकाल बाहर

"दिशाओं से उसे निकाल कर छोड़ेंगे जो हम से शत्रुता करता है।" शत्रु को हम कहीं का भी नहीं रहने देंगे।

अथर्व. १०-५

शत्रु की बात तो दूर रही, शत्रु से की जाने वाली हिंसा को ही मूर्तिमती मानकर उसे फटकार बतलाता हुआ वैदिक वीर सिंहनाद कर रहा है—

२६. स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे,
विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥

अथर्व.१०-१-२०

सावधान! हमारे घरों में लोहे की तीक्ष्ण धार वाली तलवारें विद्यमान हैं। तलवार की तेज़ धार से तेरा एक-एक जोड़ अलग कर देंगे। भाग खड़ी हो, ओ हिंसा-पिशाचिनी! यहाँ तेरा क्या काम है।

करेंगे (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) दुश्मनी करता है।

२६. (स्वायसाः) मज़बूत लोहे की बनी (असयः) तलवारें (सन्ति) विद्यमान हैं (नः गृहे) हमारे घर में। (विद्म) हम जानते हैं (कृत्ये) ओ हिंसा-पिशाचिनी! (ते) तेरे (यतिधा) जितने प्रकार के (परूंषि) जोड़ हैं। (उत्तिष्ठ एव) उठ ही जा (परेहि इतः) भाग खड़ी हो यहाँ से, (अज्ञाते) ओ अपरिचिते! (इह किम् इच्छसि) यहाँ तू क्या चाहती है?

३०. ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ,
चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव अथर्व. १०-१-२१

आ शत्रुजन्य हिंसा-पिशाचनी! तेरी गर्दन अलग कर दूँगा, तेरे पैर काट डालूँगा; नहीं तो भाग जा यहाँ से।

और सुनिये, अपनी अपूर्व वीरता का परिचय देता हुआ मनुष्य कह रहा है—

३१. अभीदमेकमेको अस्मि निष्षा--
ळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि,
किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥

ऋग्. १०-४८-७

अरे, मैं अकेला ही रिपु-दल के छक्के छुड़ा दूँगा। यदि दो मिल कर आयेंगे तो उनके लिए भी मैं अकेला पर्याप्त हूँ। दो के

---

३० (कृत्ये) ओ हिंसा-पिशाचिनि! (ते) तेरी (ग्रीवाः) गर्दन (पादौ-च) और दोनों पैर (अपि कर्त्स्यामि) काट डालूँगा, नहीं तो (निर्द्रव) भाग जा।

३१. (निष्षाड् अस्मि) मैं निःशेष रूप से शत्रुओं का मर्दन कर डालने वाला हूँ, (एकः) अकेला ही (इदम् एकम्) इस एक को (अभि-अस्मि) परास्त कर दूँगा, (द्वा) दो को भी (अभि-अस्मि) परास्त कर दूँगा, (त्रयः) तीन भी (किमु करन्ति) मेरा क्या कर लेंगे। (खले)

स्थान पर तीन आ जायें तो वे भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। शत्रुओं को मैं ऐसे पीस डालूँगा जैसे खलिहान में पूलों को। ये निर्वीर्य शत्रु मेरी क्या निन्दा कर रहे हैं!

३२. अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं,
स वृत्रेव दासं वृत्रहाऽरुजम्।
यद् वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्,
दूरे पारं रजसो रोचनाऽकरम्॥

ऋग्. १०-४९-६

सुनो, मैं वह हूँ जिसने गरीबों का खून चूस-चूस कर नई २ हवेलियाँ खड़ी कर लेने वाले, बड़े बड़े रथ-बग्घियों पर सैर-सपाटे करने वाले दस्युओं को बात की बात में धूल में मिला छोड़ा है। अत्याचार के बल पर फूलने-फलने वाले दुष्टों को मैंने टाँग

संग्राम में (भूरि) इकट्ठे बहुतों को (प्रतिहन्मि) मैं कुचल डालूँगा (न) जैसे (खले) खलिहान में (पर्षान्) पूलों को। (अनिन्द्राः) ये निर्वीर्य (शत्रवः) शत्रु (मा किं निन्दन्ति) मेरी क्या निन्दा कर रहे हैं?

३२. (अहं सः) मैं वह हूँ (यः) जो (नव-वास्त्वम्) नई २ हवेलियों वाले (बृहद्रथम्) बड़े २ रथों वाले भी (दासम्) दस्यु की (अरुजम्) धजी २ उड़ा देता हूँ, (इव) जैसे (वृत्रहा) बिजली (वृत्रा) बादलों की। (यत्) और जो, मैं (वर्धयन्तम्) बढ़ते हुए (प्रथयन्तम्) विस्तार को पाते हुए [उस दस्यु को] (आनुषक्) निरन्तर (दूरे) बहुत दूर (रोचना

पकड़ कर ऐसा उछाला है कि वे आकाश के भी परले पार जाकर गिरे हैं।

मैं अकेला ही नहीं, मेरे सब वीर तीक्ष्ण-तेजस्वी हैं—

३३. तीक्ष्णीयांसः परशो रग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः॥

अथर्व. ३-१६-४

परशु की धार से भी तीक्ष्ण हैं, अग्नि की ज्वाला से भी तीक्ष्ण हैं, इन्द्र के वज्र से भी तीक्ष्ण हैं—जिनका मैं अगुआ हूँ।

देखिये, वैदिक वीर के अन्दर कैसा अदम्य उत्साह है, कैसी वीरता की उमंग है, कैसा प्रबल आत्म-विश्वास है! जो बाह्य या आन्तरिक शत्रु उसके इस उत्साह को, इस मनोबल को, कुचलना चाहेगा, उसकी वह कैसी दुर्गति बनायेगा यह भी उसी के मुख से सुन लीजिये—

३४. इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ
भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति।

रजसः पारे) चमकीले द्यु लोक के भी परले पार (अकरम्) कर देता हूँ- उठाकर फेंक देता हूँ।

३३. (तीक्ष्णीयांसः) अधिक तीक्ष्ण हैं (परशोः) परशु से, (उत) और (अग्नेः) अग्नि से भी (तीक्ष्णतराः) अधिक तीक्ष्ण हैं। (इन्द्रस्य वज्रात्) इन्द्र के वज्र से (तीक्ष्णीयांसः) अधिक तीक्ष्ण हैं (येषाम्) जिनका (अस्मि) मैं हूँ (पुरोहितः) अगुआ।

३४. (देवाः) हे देवो! (इदम्) मेरे इस कथन को (शृणुत) सुन

पाशे स बद्धो दुरिते नियुज्यतां
यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥

अथर्व. २-१२-३

हे देवो ! सुन लो, मेरी इस भीष्म-प्रतिज्ञा को सुन लो। आज मेरे बलवान् मन में प्रबल संकल्प उठ रहे हैं। जो कोई मेरे मनोबल की हिंसा करने आयेगा वह पाशबद्ध होकर दुर्गति को पायेगा।

३५. इदमिन्द्र शृणुहि सोमप,
यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं,
यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥

अथर्व.२-१२-३

ऐ मेरे आत्मन् ! सुन, जो कि मैं देदीप्त हृदय के साथ पुकार २ कर कह रहा हूँ। काट डालूँगा उसे, जैसे कुल्हाड़े से वृक्ष को, जो मेरे मन की हिंसा करने आयेगा।

लो, (ये) जो तुम (यज्ञियाः) पूजास्पद (स्थ) हो; (भरद्वाजः) मेरा बलवान् मन (मह्यम्) मेरे लिए (उक्थानि) प्रबल संकल्पों को (शंसति) कह रहा है। (स) वह (पाशे बद्धः) पाश-बद्ध होकर (दुरिते नियुज्यताम्) दुर्गति में पड़े (यः) जो (अस्माकम्) हमारे (इदं मनः) इस मन की (हिनस्ति) हिंसा करता है।

३५. (सोमप इन्द्र) हे वीरता के सोम रस का पान करने वाले मेरे आत्मन् ! (इदं शृणुहि) यह सुन ले (यत् त्वा) जो तुझे (शोचता हृदा)

भला किसकी हिम्मत है जो ऐसे उग्र मनस्वी के मन की हिंसा कर सके। मन में आने वाले पाप को भी वह वीर देखिये कैसी फटकार बता रहा है—

३६. परोऽपेहि मनस्पाप, किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये, वृक्षां वनानि संचर,
गृहेषु गोषु मे मनः॥ अथर्व. ६-४५-१

ओ मन के पाप! चल दूर हट मेरे पास से, क्यों निन्दित सलाहें दे रहा है? चल लम्बा बन यहाँ से, वृक्षों से जाकर टकरा, जँगलों में भटकता फिर। मुझे फुरसत कहाँ है जो तेरा स्वागत करूं। मेरा मन तो गृह-कार्यों में और गो-सेवा आदि शुभ कार्यों में लगा है।

कैसी आत्म-विश्वास-भरी वीरतापूर्ण और सजीव उक्ति है। क्या ऐसे सतर्क और साहसी व्यक्ति के मन में पाप कभी डेरा डाल सकता है? आगे देखिये, अपने संकल्प-बल को जागृत करता हुवा वह वीर कह रहा है—

देदीप्त हृदय के साथ (जोहवीमि) पुकार पुकार कर कह रहा हूं। (वृश्चामि तम्) काट डालूंगा उसे, (इव) जैसे (कुलिशेन) कुल्हाड़े से (वृक्षम्) वृक्ष को, (यः) जो (अस्माकम्) हमारे (इदं मनः) इस मन की (हिनस्ति) हिंसा करता है।

३६. (मनस्पाप) ओ मन के पाप! (परः अपेहि) परे हट, (किम्) क्यों (अशस्तानि) निन्दित (शंससि) सलाहें दे रहा है? (परेहि) दूर

३७. जहि त्वं काम मम ये सपत्ना
अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे
मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥

अथर्व. ६-२-१०

जाग, जाग, ओ मेरे संकल्प-बल, तू जाग। राक्षसों को मार गिरा, इन्हें घोर अन्धकार में धकेल दे। वे आततायी निरिन्द्रिय और निर्वीर्य हो जायें, एक दिन को भी जीवित न बचने पावें।

अस्तु, आइये अब हम वेद के उन स्थलों पर दृष्टिपात करते हैं जो विशेष रूप से प्रबल आशावाद और आत्म-विश्वास से ओतप्रोत हैं। यह वैदिक दृष्टि नहीं है कि मनुष्य यह समझे कि मैं तो दीन हूँ, हीन हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ, और वह दीनता-भरे शब्दों में गिड़गिड़ाता फिरे। वेद तो कहता है कि हे मनुष्य! तेरे अन्दर अनन्त शक्ति का बीज निहित है, तू क्या नहीं कर सकता?

भाग जा (त्वा) तुझे (न कामये) मैं नहीं चाहता हूँ। (वृक्षान्) पेड़ों पर (वनानि) जंगलों में (संचर) भटकता फिर। (मे मनः) मेरा मन तो (गृहेषु) गृह-कार्यों में और (गोषु) गौओं के पालन में [लगा हुआ है]।

३७. (काम) ऐ मेरे संकल्प-बल! (त्वं) तू (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं उन्हें (जहि) मार गिरा, (एनान्) इन को (अन्धा तमांसि) घोर अन्धकार में (अव पादय) गिरा दे। (सर्वे) सब (निरिन्द्रियाः)

३८. दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि, मेन्या मेनिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ अथर्व. २-११-१

हे नर! जो शक्ति तुझे दूषित करने आती है, उल्टा उसी को तू दूषित कर देने वाला है। शस्त्र का तू शस्त्र है, वज्र का तू वज्र है। अपने आपको पहचान। श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबर वालों से आगे बढ़।

३९. सूरिरसि, वर्चोधा असि, तनूपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥

अथर्व. २-११-४

हे नर! तू तो विद्वान् है, वर्चस्वी है, शरीर-रक्षक है। अपने को पहचान। श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबर वालों से आगे बढ़।

४०. शुक्रोऽसि, भ्राजोऽसि, स्वरसि, ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ।

अथर्व. २-११-५

इन्द्रिय-हीन, और (अरसाः) निर्वीर्य (सन्तु) हो जायें, (ते) वे (कतमच्चन अहः) एक दिन को भी (मा जीविषुः) जिन्दा न बचें।

३८. हे नर! तू (दूष्याः) दूषक शक्ति का (दूषिः असि) दूषक है, तू (हेत्याः) तलवार की (हेतिः असि) तलवार है, तू (मेन्याः) वज्र का (मेनिः असि) वज्र है। (श्रेयांसं) श्रेष्ठों तक (आप्नुहि) पहुँच; (समम्) बराबर वाले से (अतिक्राम) आगे बढ़।

३९. हे नर! तू (सूरिः असि) विद्वान् है (वर्चोधाः असि) वर्चस्वी

हे नर! तू तो शुद्ध है, तेजस्वी है, आनन्दमय है, ज्योतिर्मान् है। अपने को पहचान। श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबर वालों से आगे बढ़।

४१. उत्क्रामातः पुरुष मावपत्था,
मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः॥

अथर्व. ८-१-४

हे नर! उन्नति कर, अवनत मत हो, मौत की बेड़ी को काट डाल।

४२. उद्यानं ते पुरुष नावयानं
जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।

अथर्व. ८-१-६

हे नर! देख, जीवन में तेरी उन्नति होनी चाहिये, अधोगति नहीं। तेरे अन्दर मैं जीवन और बल को फूँकता हूँ।

है, (तनूपानः असि) शरीर का रक्षक है।.........

४०. हे नर! तू (शुक्रः असि) शुद्ध है (भ्राजः असि) भ्राजमान है, (स्वः असि) आनन्द-स्वरूप है, (ज्योतिः असि) ज्योतिःस्वरूप है।....

४१. (पुरुष) हे पुरुष! (अतः) इस वर्तमान अवस्था से (उत्क्राम) ऊपर उठ, (मा अवपत्थाः) नीचे मत गिर, (मृत्योः) मौत की (पड्वीशम्) बेड़ी को (अवमुञ्चमानः) काट कर नीचे गिरा दे।

४२. (पुरुष) हे पुरुष! (ते उद्-यानम्) तेरी उन्नति हो (न अवयानम्) अधोगति नहीं, (ते) तेरे लिए (जीवातुं) जीवन को, और (दक्षतातिम्) बल को (कृणोमि) रचता हूँ।

४३. "इतो जयेतो विजय, संजय जय, स्वाहा ।"

अथर्व. ८-८-२४

इधर विजय पा, उधर विजय पा, कमाल की विजय हासिल कर । जीत, जीत, जीत, हर क्षेत्र में जीत, शाबाश !

जैसे हनुमान को अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं था वैसे ही मनुष्य भी अपनी शक्ति को पहचानता नहीं । वेद उसे जगा कर कहता है कि तेरे अन्दर तो अपार शक्ति प्रसुप्त पड़ी है, उसे पहचान और आगे बढ़ । जब मनुष्य अपनी इस शक्ति को पहचान लेता है तब फिर वह जगह २ दीनतापूर्वक क्रन्दन करता नहीं फिरता । वह किस प्रकार अपनी वीरता के गान गाने लगता है वेद में इसका नमूना भी देखिये—

४४. अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं,

न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन ।

ऋग्. १०-४८-५

सुनो मेरा परिचय, मैं इन्द्र हूँ, बाँका वीर हूँ, धन को कभी हार नहीं सकता । यों आसानी से कभी मरने वाला नहीं हूँ ।

---

४३. (इतः जय) इधर जीत (इतः विजय) इधर विजय पा, (संजय) कमाल की जीत हासिल कर, (जय) सर्वत्र जीत, (स्वाहा) शाबाश !

४४. (अहम् इन्द्रः) मैं इन्द्र हूँ—अद्वितीय वीर हूँ, (इत्) निश्चय ही (धनम्) धन को (न पराजिग्ये) कभी हार नहीं सकता, (कदाचन) कभी (मृत्यवे न अवतस्थे) मौत का विषय नहीं बनता ।

४५. अहमस्मि सहमान, उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥

अथर्व. १२-१-५४

मैं साहसी हूँ, वीर हूँ, भूमि भर में उत्कृष्ट हूँ। दुश्मन से मुकाबला पड़ने पर उसके छक्के छुड़ा देने वाला हूँ। सब शत्रुओं को परास्त कर डालने की शक्ति मुझ में है। जिस दिशा में कदम बढ़ाऊँगा दुष्टों को पकड़ पकड़ कर मसल डालूँगा।

४६. यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि,
यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमान्-
अवान्यान् हन्मि दोधतः ॥

अथर्व. १२-१-५८

---

४५. (अहम्) मैं (सहमानः) साहसी (अस्मि) हूँ, (भूम्याम्) भूमि पर (उत्तरः नाम अस्मि) बड़ा ही उत्कृष्ट प्रसिद्ध हूँ। मैं (अभी-षाड् अस्मि) मुकाबले में आये हुए को परास्त कर देने वाला हूँ, (विश्वा-षाड्) सब को परास्त कर देने वाला हूँ। (आशाम् आशाम्) प्रत्येक दिशा में (वि-षासहिः) बड़ी ही विशेषता के साथ खूब २ कई-कई बार परास्त कर देने वाला हूँ।

४६. (यत् वदामि) जो कुछ बोलता हूँ (तद्) वह (मधुमत्)मीठा (वदामि) बोलता हूँ. (यत्) जो (ईक्षे) देखता हूँ, (तद्) तो (मा) मुझे (वनन्ति) [सब] चाहने लगते हैं। पर साथ ही मैं (त्विषीमान्

जिससे बात करता हूँ मीठा बोलता हूँ; जिसकी ओर दृष्टि करता हूँ वह मुझ से स्नेह करने लगता है। एक ओर तो मेरा यह मधुर रूप है; किन्तु साथ ही ऐसा तेजस्वी और वेगवान् भी हूँ कि जो दुष्ट मुझे अपना क्रोध दिखाते हैं उन्हें बात की बात में मार गिराता हूँ।

अरे, मत समझो कि मैं क्षुद्र शक्ति वाला हूँ।

४७. बृहस्पतिर्मे आत्मा, नृमणा नाम हृद्यः।

अथर्व. १६-३-५

मेरा आत्मा बड़ा विशाल है, मेरे मन के अन्दर कमाल की नेतृत्व-शक्ति भरी पड़ी है।

४८. असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः।
समुद्रो अस्मि विधर्मणा॥

अथर्व. १६-३-६

तेजस्वी, और (जूतिमान्) वेगवान् (अस्मि) हूँ, (दोधतः) क्रोध दिखाने वाले (अन्यान्) शत्रुओं को (अवहन्मि) मार गिराता हूँ।

४७. (मे आत्मा) मेरा आत्मा (बृहस्पतिः) बड़ी भारी शक्ति का भंडार है, मैं (नृमणाः नाम) नेतृत्व-शक्ति से भरे मन वाला हूँ (हृद्यः) सब के हृदय को प्रिय लगने वाला हूँ।

४८. (मे हृदयम्) मेरा हृदय (असंतापम्) सन्ताप-रहित है, (गव्यूतिः) मेरी इन्द्रियों की गति (उर्वी) बड़ी विशाल है, (विधर्मणा) विशेष विशेष गुणों का (समुद्रः अस्मि) मैं समुद्र हूँ।

मेरे हृदय में संताप के लिए स्थान नहीं है, मेरी इन्द्रियों की शक्ति बड़ी विस्तृत है, गुणों का मैं समुद्र हूँ।

४९. परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाऽहं,
कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या,
मा मानुषीरवसृष्टा वधाय॥

अथर्व. १७-१-२८

वेद-ज्ञान का कवच मैं पहने हुए हूँ, सूर्य की ज्योति और प्रताप से मैं भासमान हूँ। दैवी विपत्तियाँ मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं, मानवी विपत्तियों का तो कहना ही क्या है।

५०. यश्च सापत्नः शपथो, जाम्याः शपथश्च यः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात्, सर्वं तन्नो अधस्पदम्॥

अथर्व. २-७-२

४९.(अहम्) मैं (ब्रह्मणा वर्मणा) वेद-ज्ञान के कवच से, (कश्यपस्य) सूर्य की (ज्योतिषा) ज्योति से (वर्चसा च) और प्रताप से (परीवृतः) घिरा हुआ हूँ। (याः दैव्याः इषवः) जो दैवी बाण हैं वे (मा) मुझे (मा-प्रापन्) नहीं प्राप्त हो सकते [अर्थात् दैवी विपत्तियाँ मुझे चलायमान नहीं कर सकतीं] (मा) न ही (वधाय) मारने के लिए (अवसृष्टाः) छोड़े हुए (मानुषीः इषवः) मनुष्यों के बाण [अर्थात् मनुष्य-जन्य आपत्तियाँ भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं]।

५०. (यः च) जो भी (सापत्नः) शत्रु का (शपथः) शाप है (यः च)

शत्रु का शाप हो चाहे बन्धु का शाप हो, और भले ही स्वयं ब्रह्मा भी क्रुद्ध होकर शाप दे डाले, सबको मैं पादाक्रान्त कर दूँगा।

५१. शप्तारमेतु शपथो, यः सुहार्त्तेन नः सह।

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि॥

अथर्व. २-७-५

मुझे शाप देने वाले दुष्ट मनुष्य का शाप उल्टा उसी पर जाकर पड़ेगा। मैं तो उसके पक्ष में हूँ जो शुभ हृदय वाला है। आँखों से सैन चलानें वाले दुष्ट-हृदयी दुर्जन की हड्डी-पसली तोड़ दूँगा।

मत समझो कि यह ४-५ फिट का छोटा सा शरीर भला क्या कर लेगा।

५२. सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो-

ऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।

अस्तृतो नामाहमयमस्मि॥

अथर्व. ५-९-७

और जो (जाम्याः) बन्धु का (शपथः) शाप है, और (यत्) यदि (ब्रह्मा) साक्षात् ब्रह्मा भी (मन्युतः) क्रोध से (शपात्) शाप दे डालता है तो (सर्वं तत्) वह सब (नः अधस्पदम्) हमारे पादाक्रान्त हो जायेगा।

५१. (शप्तारम्) शाप देने वाले पर ही (एतु) जाये (शपथः) उसका शाप। (यः सुहार्त्) जो शुभ हृदयवाला है (तेन) उससे (नः सह) हमारा साथ है। (चक्षुर्मन्त्रस्य) आँखों से सैन चलाने वाले (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले की (पृष्टीः) हड्डी-पसलियाँ (अपि-शृणीमसि) तोड़ डालेंगे।

यह मेरी देखने में छोटी-सी लगने वाली आँख शक्ति में छोटी नहीं, किन्तु सूर्य के बराबर है। मेरी प्राण-शक्ति का अनुमान करना हो तो इस अपार वायु-मण्डलसे कर लो। मेरे शरीरके मध्य-भाग की तुलना अन्तरिक्ष से कर सकोगे। और मेरा यह छोटे से कद वाला शरीर, देखने में छोटा होता हुआ भी, शक्ति में छोटा नहीं, किन्तु समूची पृथिवी के बराबर है। मैं अविनश्वर हूँ, किसी के मारे मर नहीं सकता।

ये हैं वैदिक वीर के उद्गार। कई मनुष्य किसी भी कार्य को बड़े निरुत्साह के साथ आरम्भ करते हैं। पहले से ही वे सोचने लगते हैं कि अरे, यह काम तो बड़ा कठिन है, मुझ से यह कैसे हो सकेगा, मैं तो बड़ा अल्प शक्ति वाला हूँ, मेरे तो यह बस का नहीं है। पर यह वैदिक भावना नहीं है। वेद के अनुसार तो मनुष्य को सदा उत्साही और आत्म-विश्वासी होना चाहिये।

५३. अयुतो ऽहमयुतो म आत्मा

ऽ युतं मे चक्षु रयुतं मे श्रोत्रम्।

अयुतो मे प्राणो ऽ युतो मे ऽ पानो-

ऽ युतो मे व्यानो ऽ युतो ऽहं सर्वः ॥

अथर्व. १९-५१-१

---

५२. (सूर्यः मे चक्षुः) सूर्य के सदृश मेरी आँख है, (वातः प्राणः) वायु के सदृश मेरा प्राण है, (अन्तरिक्षम् आत्मा) अन्तरिक्ष के सदृश मेरा मध्यभाग है, (पृथिवी शरीरम्) पृथिवी के सदृश मेरा शरीर है, (अयम् अहम्) यह मैं (अस्तृतः नाम अस्मि) अमर प्रसिद्ध हूँ।

देखिये, इस मन्त्र में एक वीर मनुष्य कार्य को आरम्भ करते समय कैसी उत्साह की भावना प्रकट कर रहा है। अरे मैं एक नहीं दस हज़ार हूँ; दस हज़ार मिलकर जिस काम को कर सकते हैं उसे मैं अकेला कर लूँगा। मेरे अन्दर दस हज़ार के बराबर आत्मबल है, मेरी आँखों-कानों की शक्ति दस हज़ार के बराबर है। मुझ में प्राण-बल दस हज़ार है, मुझ में अपान-बल और व्यान-बल दस हज़ार है। क्या २ गिनाऊँ, मेरा एक एक अङ्ग—आँख, नाक, कान, मुख, हाथ, पैर, मन, बुद्धि, आत्मा सभी दश-सहस्र-गुणित शक्ति से आपूरित हैं। मैं क्या नहीं कर सकूँगा ? कौन-सा काम मेरे लिये भला असाध्य है ?

५४. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे-

ऽश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आरभे ॥

अथर्व.१९-५१-२

---

५३. (अहम्) मैं अकेला (अयुतः) दस हज़ार के बराबर हूँ, (मे आत्मा) मेरा आत्मा (अयुतः) दस हज़ार के बराबर है, (मे चक्षुः अयुतम्) मेरी आँख दस हज़ार के बराबर है, (मे श्रोत्रम् अयुतम्) मेरा कान दस हज़ार के बराबर है, (मे प्राणः अयुतः) मेरा प्राण दस हज़ार के बराबर है, (मे अपानः अयुतः) मेरा अपान दस हज़ार के बराबर है, (मे व्यानः अयुतः) मेरा व्यान दस हज़ार के बराबर है, (अहं सर्वः) मैं सारा का सारा (अयुतः) दस हज़ार के बराबर हूँ।

५४. हे कर्म ! (सवितुः देवस्य) प्रेरक परमेश्वर की (प्रसवे) प्रेरणा

*मैं इस महान् कार्य को आरम्भ करता हूँ, सविता प्रभुसे प्रेरणा पाकर इस महान् कार्य को आरम्भ करता हूँ। मत समझो कि मैं अपनी इन छोटी २ भुजाओं से क्या कर सकूँगा। ये छोटी २ भुजायें ही शक्ति में द्यौ और पृथिवी के बराबर हैं; द्यावापृथिवी की तरह व्यापक और विशाल मेरी भुजायें हैं। मेरी एक भुजा द्यौ है तो दूसरी भुजा पृथिवी है। हाँ, हाँ, द्यौ और पृथिवी के बराबर मेरी भुजायें हैं। मत सोचो कि इन छोटे-छोटे बिलस्त भर के हाथों से मैं क्या कर सकूँगा, ये मेरे हाथ नहीं "पूषा" के हाथ हैं। पूषा सूर्य के कर जैसे चारों ओर फैले हुए विशाल अन्धकार को पल भर में एक तरफ समेट कर रख देते हैं, और १०-१२ घंटे के थोड़े से समय के लिये ही भूमण्डल पर आकर कितने कितने कार्य सिद्ध कर जाते हैं, वैसे ही सक्षम और कार्यसाधक मेरे हाथ हैं। ऐसे विशाल हाथों से और ऐसी विशाल भुजाओं से, हे कर्म ! मैं तुझे आज प्रारम्भ करता हूँ।

यह है वेदोक्त भावना। इस वीर-भावना से ओतप्रोत हो कर जो कार्य प्रारम्भ करते हैं, वे मध्य में आने वाली सब विघ्न-बाधाओं को चीरते हुए आगे बढ़ते चलते हैं, और अन्त में कार्य-सिद्धि तथा विजय-लक्ष्मी के भागी बनते हैं। अस्तु अन्त में हम प्रबल पुरुषार्थ की भावना का नस-नस में संचार कर देने वाले, वैदिक

से (प्रसूतः) प्रेरित होकर, मैं (अश्विनोः बाहुभ्याम्) द्यावापृथिवी के सदृश अपनी भुजाओं से और (पूष्णः हस्ताभ्याम्) 'पूषा' सूर्य के से हाथों से (त्वा) तुझे (आरभे) प्रारम्भ करता हूँ।

कर्मयोग के प्रतीक रूप निम्न मन्त्र के साथ अपने इस लेख को समाप्त करते हैं--

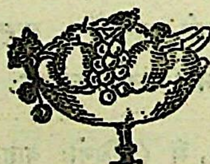
५५. कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद्, धनञ्जयो हिरण्यजित् ॥

अथर्व.७-५०-८

मैं हाथ पर हाथ धर कर बैठने वाला नहीं हूं । मेरे दाहिने हाथ में कर्म है और बायें हाथ में विजय रखी है । इस "कर्म" रूपी जादू की छड़ी हाथ में लेते ही गौ,घोड़े, धन-धान्य, सोना चाँदी जो चाहूँगा सो मेरे आगे हाथ बाँध कर खड़ा हो जायेगा ।

---

५५. (मे) मेरे (दक्षिणे हस्ते) दाहिने हाथ में (कृतम्) कर्म है, (मे सव्ये) मेरे बायें हाथ में (जयः आहितः) विजय धरी है । इस कर्म द्वारा मैं (गोजिद्) गो-विजयी (अश्वजित्) अश्व-विजयी (धनञ्जयः) धन-विजयी (हिरण्यजित्) हिरण्य-विजयी (भूयासम्) हो जाऊँ ।



उद्‌बोधन

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः

"मित्रो ! उठो, जागो, मनोबल से

अनुप्राणित होवो ।"

ऋग्. १०-१०१-१

१. उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः
समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीडाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवी-
मिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः ॥

ऋग्. १०-१०१-१

उठो, जागो, हे भाइयो ! मनोबल से अनुप्राणित हो जाओ। एक राष्ट्र के वासी तुम सब अपने अन्दर उत्साह की अग्नि को प्रदीप्त करो। तुम्हारी रक्षार्थ मैं उस "अग्नि" का आह्वान करता हूँ जिसे धारण करते ही मनुष्य क्रियाशील हो उठता है, तुम्हारी रक्षार्थ मैं प्रकाश से जगमगाती हुई उस "उषा" का आह्वान करता हूँ जिस से जीवन ज्योतिर्मय हो उठते हैं। अपने जीवनों को 'अग्नि-मय' बनाओ, अपने जीवनों को ज्योतिर्मय बनाओ।

२. मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

---

१. (सखायः) हे मित्रो ! (उद्बुध्यध्वम्) उठो, जागो (समनसः) मनोबल से युक्त होवो, (सनीडाः) एक निवासस्थान वाले (बहवः) बहुत से तुम सब (अग्निम्) [उत्साह की] अग्नि को (समिन्ध्वम्) प्रदीप्त करो। (दधिक्राम्) जिसे धारण करके मनुष्य क्रियाशील हो जाता है ऐसी (अग्निम्) उत्साहाग्नि को (देवीम् उषसं च) और प्रकाशमयी उषा को (इन्द्रावतः वः) तुम प्रभु-भक्तों की (अवसे) रक्षा के लिए (निह्वये) बुलाता हूँ।

आप्यायमानाः प्रजया धनेन
शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥

ऋग्. १०-१८-२

हे भाइयो ! उठो, मौत के पैर को परे धकेल दो, श्रेष्ठ लम्बी आयु को धारण करो। धन-धान्य तथा प्रजा से फूलो-फलो और शुद्ध-पवित्र तथा परोपकारी जीवन वाले बनो।

३. अश्मन्वती रीयते संरभध्व-
मुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा
अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥

अथर्व. १२-२-२६

---

२. (ऐत) आओ, (यत् मृत्योः पदम्) जो मृत्यु का पैर है उसे (योपयन्तः) परे धकेल कर (प्रतरम्) श्रेष्ठ (द्राघीयः) लम्बी (आयुः) आयु को (दधानाः) धारण करते हुए (प्रजया) सन्तान से, और (धनेन) धन से (आप्यायमानाः) समृद्धि को पाते हुए (शुद्धाः) शरीर से शुद्ध (पूताः) मन से पवित्र और (यज्ञियासः) परोपकारी जीवन वाले (भवत) होवो।

३. (अश्मन्वती) पथरीली नदी (रीयते) वेग से बह रही है, (सखायः) मित्रो ! (उत्तिष्ठत) उठो (संरभध्वम्) मिल कर उद्यम करो, और उसे (प्रतरत) तैर जाओ। (अत्र जहीत) यहीं छोड़ दो (ये) जो (असन्) हैं (दुरेवाः) खोटी चालें। इस प्रकार (अनमीवान्) रोग-रहित

उठो, मित्रो ! देखो, वह सामने अनेक विघ्न-बाधाओं के पत्थरों से भरी संसार की दुस्तर नदी वेग से बहती चली जा रही है। उठो, तैयार हो जाओ, एक-दूसरे का हाथ पकड़लो, मिल कर उद्यम करो और उसे पार कर जाओ। जो खोटी चालें हैं उन्हें यहीं छोड़ दो। आओ, विघ्न-बाधाओं की इस भयङ्कर नदी के पार उतर कर रोग-रहित ऐश्वर्य-सुख का उपभोग करें।

हे मनुष्य ! जाग उठ, जाग उठ, सोया मत पड़ा रह। देख,

४. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं, न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।

यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥

ऋग्. ८-२-१८

जो व्यक्ति जाग कर शुभ कर्मों में लगता है उसी को देवता चाहते हैं। सोये पड़े रहने वाले से वे प्रीति नहीं करते। अच्छी तरह समझ ले, प्रमादी की कोई सहायता नहीं करता।

५. यो जागार तमृचः कामयन्ते

यो जागार तमु सामानि यन्ति।

(वाजान्) ऐश्वर्यों को (अभि) पाने के लिए (उत्तरेम) हम सब नदी के उस पार पहुँच जायें।

४. (देवाः) देवता (सुन्वन्तम्) शुभ कर्म करने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं, वे (स्वप्नाय) सोये पड़े रहने वाले की (न स्पृहयन्ति) स्पृहा नहीं करते, प्रत्युत (अतन्द्राः) प्रमाद रहित वे देव (प्रमादम्) प्रमादी का (यन्ति) नियमन करते हैं।

यो जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः

ऋग्. ५-४४-१४

"जो जागा हुआ है वही ऋचाओं से कुछ लाभ ले सकता है, जो जागा हुआ है उसी की सामवेद के मन्त्र सहायता करते हैं। जो जागा हुआ है उसी के आगे चाँद मैत्री के लिये हाथ पसारता है।" उसी की यह सारी प्रकृति दासी बनती है जो जागा हुआ है, जो जागा हुआ है। इसलिये—

६. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय॥

अथर्व. १९-६३-१

उठ खड़ा हो, जाग जा, ऐ ज्ञानी! यज्ञ द्वारा अपने अन्दर देव-भावों को जगा ले। अपनी आयु को, प्राण को, प्रजा को, कीर्ति को वढ़ा, पशुओं को बढ़ा, यज्ञ करने वाले को बढ़ा।

---

५. (यः जागार) जो जागा रहता है (तम् उ) उसी से (ऋचः) ऋचायें (कामयन्ते) प्रीति करती हैं, (यः जागार) जो जागा रहता है (तम् उ) उसी के पास (सामानि) सामवेद के मन्त्र (यन्ति) सहायतार्थ पहुँचते हैं। (यः जागार) जो जागा रहता है (तम्) उसे (अयं सोमः) यह चन्द्रमा (आह) कहता है कि (अहम्) मैं (न्योकाः) तेरे साथ एक घर वाला हो कर (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (अस्मि) हूँ।

६. (ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञानी! (उत्तिष्ठ) उठ, जाग, अपने अन्दर (देवान्) देवभावों को (यज्ञेन) यज्ञ द्वारा (बोधय) जगा। (आयुः)

हे नर ! तू वीर बन, निरुत्साहित मत हो। यदि अचानक कभी क्षण दो क्षण के लिये तू हतोत्साह भी हो बैठे तो –

७. आ त एतु मनः पुनः, क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥

ऋग्. १०-५७-४

पुनः तेरे अन्दर मनोबल संचरित हो जाये, ताकि तू कर्म कर सके, बली बने, जीवित-जागृत हो कर रहे और चिरञ्जीवी हो कर चिरकाल तक सूर्योदय के रमणीक दृश्य को देखता रहे ।

८. समुद्र ईशे स्रवता-मग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे, त्वमेकवृषो भव ॥

अथर्व. ६-८६-२

अपनी आयु को (प्राणम्) प्राण को (प्रजाम्) सन्तान को, (पशून्) पशुओं को (कीर्तिम्) कीर्ति को (यजमानं च) और यज्ञ करने वाले को (वर्धय) बढ़ा ।

७. (ते) तेरे अन्दर (पुनः) फिर (मनः) मनोबल (आ-एतु) आ जाये, (क्रत्वे) कर्म के लिए (दक्षाय) बल के लिए (जीवसे) जीवन के लिए (च) और (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यं दृशे) सूर्य के दर्शन के लिए ।

८. (समुद्रः) समुद्र (स्रवताम्) नदियों का (ईशे) राजा है, (अग्निः) अग्नि (पृथिव्याः) पृथिवी का (वशी) राजा है, (चन्द्रमा) चाँद (नक्षत्रा

हे मनुष्य ! तू सर्वश्रेष्ठ हो जा, सब का राजा बन जा। देख, जैसे यह समुद्र नदियों का राजा बना हुआ है, यह अग्नि पृथिवी का राजा बना हुआ है, यह चन्द्रमा नक्षत्रों का राजा बना हुआ है, वैसे ही तू भी सब का राजा बन जा।

९. इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं, विश्वस्येशान ओजसा।
वृत्राणि वृत्रहन् जहि ॥

ऋग्. ८-१७-९

हे वीर ! अग्रगामी बन,अपने प्रताप से जगत् का राजा हो जा। हे पापनाशक ! पाप को संसार से मिटा दे।

१०. दिवं च रोह पृथिवीं च रोह
राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।
प्रजां च रोहाऽमृतं च रोह
रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥

अथर्व. १३-१-३४

याम्) तारों का (ईशे) राजा है। ऐसे ही हे नर ! (त्वम्) तू (एकवृषः) सर्वश्रेष्ठ, सबका राजा (भव) हो जा।

९. (इन्द्र) हे वीर ! (त्वम्) तू (पुरः प्रेहि) आगे २ बढ़, (ओजसा) अपने प्रताप से (विश्वस्य ईशानः) संसार का राजा बन जा। (वृत्रहन्) हे पापनाशक ! (वृत्राणि जहि) पापों को मिटा।

१०. हे नर ! तू उन्नति करता २ (दिवं रोह) आस्मान में चढ़ जा,

हे मनुष्य ! तू उन्नत हो, उन्नत हो, इतना उन्नत हो कि आस्मान में जा चढ़। पृथिवी पर सब से उन्नत हो, राष्ट्र में सबसे उन्नत हो, धन-दौलत में सब से उन्नत हो, प्रजा में सब से उन्नत हो, अमृत-प्राप्ति में सब से उन्नत हो, उन्नति में तू सूर्य को छू ले।

११. बएमहाँ असि सूर्य, बडादित्य महाँ असि ।
महाँस्ते महतो महिमा, त्वमादित्य महाँ असि ॥

अथर्व. १३-२-२९

"हे सूर्य-सदृश उच्चता वाले नर ! तू महान् है। सचमुच ऐ अमृतपुत्र ! तू महान है। तुझ महान् की महिमा महान् है। हे अमृतपुत्र ! तू महान् है।" यदि अपनी इस महत्ता को तू सदा स्मरण रखेगा तो कभी तू पतन की ओर नहीं जा सकता।

(पृथिवीं च रोह) पृथिवी पर सब से ऊँचा हो जा, (राष्ट्रं च रोह) राष्ट्र में सबसे ऊँचा हो जा (द्रविणं च रोह) धन-दौलत में सबसे ऊँचा हो जा, (प्रजां च रोह) सन्तान की दृष्टि से सबसे ऊँचा हो जा, (अमृतं च रोह) अमृत प्राप्ति में सबसे ऊँचा हो जा, [इतना ऊँचा हो जा कि] (रोहितेन) सूर्य से (तन्वम्) अपने शरीर को (संस्पृशस्व) छुआ ले।

११. (सूर्य) हे सूर्य से तुलना किये जाने वाले नर ! (बट्) सचमुच (महान् असि) तू महान् है, (आदित्य) हे अदिति के पुत्र ! हे अमृत-पुत्र ! (बट्) सचमुच ही (महान् असि) तू महान् है। (महतः ते) तुझ महान् की (महिमा) महिमा (महान्) महान् है, (आदित्य) हे अमृत-पुत्र ! (त्वं महान् असि) तू महान् है।

१२. हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा,
ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव ताँ जहि हरसा जातवेदो-
ऽबिभ्यदुग्रो ऽर्चिषा दिवमारोह सूर्य ॥

अथर्व. १९-६५-१

हे नर! कान्ति में तू सूर्य है, सूर्य के सदृश ऊँची उड़ान लेने वाला है। तू उन्नति के विशाल आकाश में पहुँच जा। उन्नति के आकाश की ओर अग्रसर होते हुए तेरे मार्ग में जो भी विघ्न डालना चाहे, उसे तू अपने असीम तेज से चकाचौंध कर के नीचे गिरा दे। देख, भयभीत मत हो, अपनी अनुपम दुर्दमनीय ज्योति को लिये हुए तू उन्नति की ओर अग्रसर होता जा, होता जा, और अन्त में शिखर पर पहुँच जा।

मत डर कि उन्नति का पथ कण्टकाकीर्ण है—

१३. अप त्यं परिपन्थिनं, मुषीवाणं हुरश्चितम् ।
दूरमधि स्रुतेरज ॥

ऋग्. १-४२-३

---

१२. (सूर्य) हे सूर्य-प्रभ नर! (हरिः) दोषों का हर्ता (सुपर्णः) उत्तम पंखों वाला—ऊँचा उड़ने वाला तू (अर्चिषा) अपने तेज के साथ (दिवम्) उन्नति के द्यु-लोक में (आरुहः) चढ़ जा। (दिवम् उत्पतन्तम्) द्यौ की तरफ़ ऊपर उड़ते हुए (त्वा) तुझे (ये) जो (दिप्सन्ति) दबाना चाहें (तान्) उनको (जातवेदः) हे ज्ञानी! तू (हरसा) अपनी ज्योति से (अव जहि) मार गिरा, (अबिभ्यत्) न डरता हुआ (उग्रः) प्रतापी तू

जो कोई चोर, कुटिल, पापी राक्षस तेरे मार्ग में रास्ता रोक

कर खड़ा हो उसे तू पकड़ कर रास्ते से दूर फेंक दे।

१४. अपघ्नन् सोम रक्षसो ऽभ्यर्ष कनिक्रदत्।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥

ऋग्. ९-६३-२९

हे वीरता के देव! राक्षसों का विध्वंस करता हुआ, गर्जता हुआ आगे बढ़। जाज्वल्यमान उत्तम बल को प्राप्त कर।

१५. सुपर्णोऽसि गरुत्मान्, पृष्ठे पृथिव्याः सीद।
भासाऽन्तरिक्षमापृण, ज्योतिषा दिवमुत्तभान,
तेजसा दिश उद्दृंह ॥

यजुः १७-७२

(अर्चिषा) अपने तेज के साथ (दिवम्) द्यु-लोक में—उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर (आरोह) चढ़ जा।

१३. (त्यम्) उस (परिपन्थिनम्) रास्ता रोक कर खड़े हो जाने वाले (मुषीवाणम्) चोर (हुरश्चितम्) कुटिल को (स्रुतेः अधि) मार्ग से (अप अज) दूर फेंक दे।

१४. (सोम) हे वीरता के देव! (रक्षसः अपघ्नन्) राक्षसों का विध्वंस करता हुआ (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (अभ्यर्ष) आगे बढ़ (द्युमन्तम्) जाज्वल्यमान (उत्तमम्) सर्वोत्कृष्ट (शुष्मम्) बल को (अभ्यर्ष) प्राप्त कर।

१५. हे मनुष्य! (सुपर्णः असि) तू उत्तम पंखों वाला, ऊँची उड़ानें

हे नर ! तू सुपर्ण है, ऊँची उड़ान लेने वाला है, ऊँची महत्वाकांक्षा वाला है। तू 'गरुत्मान्' है, गुरु आत्मा वाला है। पृथिवी के सिंहासन पर बैठ। वहाँ बैठ कर ऐसा चमक कि अपनी चमक से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण कर दे; अपनी जगमग करती हुई ज्योति से द्यु-लोक को थाम ले; अपने तेज से दिशाओं को उठा ले।

१६. सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चामि-
अग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण।
क्षत्राणां पतिरेध्यति दिद्यून् पाहि॥

यजुः १०-१७

हे नर ! तुझे चन्द्रमा की ज्योति से अभिषिक्त करता हूँ, अग्नि के तेज से अभिषिक्त करता हूँ, सूर्य की कान्ति से अभिषिक्त करता हूँ, इन्द्र की शक्ति से अभिषिक्त करता हूँ। तू क्षत्रपति बन। शत्रु के बाणों को विफल करता हुआ आत्म-रक्षा करता रह।

लेने वाला है (गरुत्मान् असि) महान् आत्मा वाला है, तू (पृथिव्याः पृष्ठे) पृथिवी के पृष्ठ पर (सीद) बैठ, (भासा) अपनी चमक से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपृण) भर दे, (ज्योतिषा) ज्योति से (दिवम्) द्यु-लोक को (उत्तभान) ऊपर थाम ले, (तेजसा) तेज से (दिशः) दिशाओं को (उद्-दृंह) ऊपर उठा ले।

१६. हे नर ! (त्वा) तुझे (सोमस्य) चन्द्रमा के (द्युम्नेन) तेज से (अग्नेः) अग्नि के (भ्राजसा) तेज से, (सूर्यस्य) सूर्य की (वर्चसा) कान्ति से (इन्द्रस्य) इन्द्र के (इन्द्रियेण) बल से (अभिषिञ्चामि) अभिषिक्त

१७. मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व
धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ॥

यजुः ६-३५

भयभीत मत हो, पथ से विचलित मत हो, बल धारण कर। ये दृढ़ द्यावापृथिवी तुझे दृढ़ता का पाठ पढ़ायें, तेरे अन्दर बल धारण करायें। देख, पाप को संसार से मिटा, आनन्द और शान्ति के अमृत-रस को नहीं।

१८. मा त्वा मूरा अविष्यवो, मोपहस्वान आदभन् ।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥

अथर्व. २०-२२-२

करता हूँ। तू (क्षत्राणां पतिः) क्षत्र-पति (एधि) बन. (दिद्यून्) बाणों को (अति) अतिक्रमण कर के—विफल कर के (पाहि) आत्म-रक्षा करता रह।

१७. हे नर! (मा) मत (भेः) भयभीत हो; (मा) मत (संविक्थाः) विचलित हो, (ऊर्जम्) बल को (धत्स्व) धारण कर। (धिषणे) हे द्यावापृथिवी! (वीड्वी सती) दृढ़ होते हुए तुम (वीडयेथम्) इसे दृढ़ता प्रदान करो, इस के अन्दर (ऊर्जम्) बल को (दधाथाम्) धारण कराओ। हे नर! याद रख, (पाप्मा) पाप (हतः) तुझ से मारा जाये, (न सोमः) सोमरस नहीं।

१८. (मा त्वा) न तुझे (मूराः) मूढ़ (अविष्यवः) भक्षक और

देख—मूढ़, भक्षक, उपहासकारी लोग तुझे अपने चंगुल में न फँसा सकें। ब्रह्मद्वेषियों का कभी संग मत कर।

१६. क्षत्रस्य योनिरसि, क्षत्रस्य नाभिरसि।
मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः॥

यजुः २०-१

हे वीर! तू क्षात्र-बल का भण्डार है, तू क्षात्र-बल का केन्द्र है। देख, कोई तेरी हिंसा न करने पाये। तू भी कभी हम निर्दोषों की हिंसा मत कर।

२०. अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्
तपसा युजा विजहि शत्रून्।

(उपहस्वानः) उपहासकारी लोग (आदभन्) वश में कर सकें। (माकीम्) कभी नहीं (ब्रह्मद्विषः) ब्रह्मद्वेषियों का (वनः) संग कर।

१६. तू (क्षत्रस्य) क्षात्र-बल का (योनिः) घर (असि) है; तू (क्षत्रस्य) क्षात्रबल का (नाभिः असि) केन्द्र है। कोई भी (त्वा) तेरी (मा हिंसीत्) हिंसा न करने पावे (मा) न ही (मा) मेरी (हिंसीः) तू हिंसा कर।

२०. (अभीहि) आक्रमण कर, (मन्यो) हे गर्वीले वीर! (तवसः तवीयान्) तू बलियों में बली है। (तपसा युजा) अपने तप-तेज से (शत्रून्) शत्रुओं को (विजहि) विध्वस्त कर। (अमित्रहा) अमित्र का संहार करने वाला, (वृत्रहा) पापियों का संहार करने वाला (दस्युहा

अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च
विश्वा वसून्याभरा त्वं नः ॥

ऋग्. १०-८३-३

आक्रमण कर, हे गर्वीले वीर ! तू बलियों में बली है। अपने तप-तेज से शत्रुओं को विध्वस्त कर। अमित्रों का संहार कर, पापियों का संहार कर, दस्युओं का संहार कर। पापियों से जमा की हुई सब सम्पत्ति हमारे चरणों में लाकर रख दे।

२१. धूरसि धूर्व धूर्वन्तं, धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति,
तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमं
सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥

यजुः १-८

हे नर ! तू मार सकने वाला है, मार मारने वाले को। मार उसे जो हम निरपराध लोगों को मारता है। उसे मार जिसे हम मारने के लिये कटिबद्ध हैं। तू वीर है, देवजनों का नायक है। तू शुद्धतम है, पूर्णतम है, प्रियतम है, देवों का पूज्यतम है।

च) और दस्युओं का संहार करने वाला (त्वम्) तू (विश्वा वसूनि) सब सम्पत्तियों को (नः आभर) हमारे पास ले आ।

२१. हे वीर ! तू (धूः) मार सकने वाला (असि) है, (धूर्व) मार (धूर्वन्तम्) मारने वाले को; (धूर्व तम्) मार उसे (यः) जो (अस्मान् हम [सज्जनों] को (धूर्वति) मारता है। (तं धूर्व) उसे मार (यम्) जिसे (वयम्) हम [सज्जन लोग] (धूर्वामः) मारने को तैयार हैं। तू

२२. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु-अभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि, त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥
ऋग्. ८-९९-५

हे वीर ! मार-काट मचने पर तू बड़े-बड़े हौसले वालों के छक्के छुड़ा सकता है । अपयश तेरे पास नहीं फटकता । तू महान् रचयिता है, पर आवश्यकता पड़े तो विश्व का संहार कर सकता है । देख, विध्वंसियों की दाल मत गलने दे । जो तेरा वध करना चाहे उसका संहार कर ।

अरे यह क्या ? तू पाशों से जकड़ा पड़ा है !

२३. स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रव-
अनानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहागहि
किमु त्वावान् मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥
ऋग्. १०-३८-५

(देवानाम्) देवजनों का (वह्नितमम्) सब से बड़ा नायक (सस्नितमम्) शुद्धतम (पप्रितमम्) पूर्णतम (जुष्टतमम्) प्रियतम (देवहू-तमम्) देवजनों का पूज्यतम (असि) है ।

२२. (इन्द्र) हे वीर ! (त्वम्) तू (प्रतूर्तिषु) मार-काट की लड़ाइयों में (विश्वाः स्पृधः) सब बड़े से बड़े हौसले वालों को (अभि-असि) पराजित कर सकता है । (अशस्तिहा) अपयश को पास न आने देने वाला (जनिता) रचयिता और (विश्वतूः) विश्व का संहार कर सकने वाला (असि) है । (त्वम्) तू (तूर्य) संहार कर (तरुष्यतः)

मैंने तो सुना है कि स्वयं तू अपने बन्धनों को काट फेंकने वाला है, पराजित न होने वाला है, सफलता पाने वाला है। घातक के पाश से अपने आप को मुक्त कर ले, कूद कर यहाँ आ जा। क्या तुझ जैसा वीर पाश-बद्ध रहने योग्य है?

२४. तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्
तपा शंसमररुषः परस्य।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्
वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः

ऋग्. ३-१८-२

हे मनुष्य! देख, तेरे दो प्रकार के शत्रु हैं। एक तो आन्तरिक शत्रु हैं, दूसरे बाहरी शत्रु हैं। तेरे अन्दर जो कभी २ निरुत्साह, प्रमाद, हिम्मत हार जाना आदि दुर्बलता के भाव आ जाते हैं वे तेरे आन्तरिक शत्रु हैं। उन आन्तरिक शत्रुओं को तू सन्तप्त कर

वध करना चाहने वाले का।

२३. (स्ववृजम्) स्वयं अपने आपको बन्धनों से छुड़ा लेने वाला (त्वाँ) तुझे (अहम्) मैंनें (वृषभ इन्द्र) हे बांके वीर! (शुश्रव) सुना है, और (अनानुदम्) किसी से पराजित न होने वाला तथा (रध्र-चोदनम्) सफलता का प्रेरक [सुना है]। (प्रमुञ्चस्व) छुड़ा ले अपने आप को (परि कुत्सात्) घातक से। (इह आगहि) यहाँ आ जा। (किमु) क्या (त्वावान्) तुझ जैसा (मुष्कयोः बद्धः) पाशों में बद्ध (आसते) रह सकता है।

दे। साथ ही तू ऐसी वीरता दिखा कि जो दूसरे हानिकारक बाह्य शत्रु हैं उनकी भी कुत्सित अभिलाषायें कभी फलीभूत न हो सकें। हे वीर ! तू "वसु" है, तू विवेकी है, सब अविवेकी शत्रुओं को तपा डाल। ऐसा तेजस्वी बन कि तुझ से तेज की किरणें निकल २ कर चारों ओर फैलती रहें।

२५. घ्नन् मृध्राण्यप द्विषो, दहन् रक्षांसि विश्वहा।
अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥

ऋग्. ८-४३-२६

हिंसकों को मारता हुआ, द्वेषियों को कुचलता हुआ, राक्षसों को दग्ध करता हुआ हे तेजस्वी वीर ! तू अपने प्रखर तेज के साथ सदा चमकता रह।

---

२४. (अग्ने) हे अग्रणी वीर! तू (अन्तरान्) आन्तरिक (अमित्रान्) शत्रुओं को (सुतपः) अच्छी तरह से तपा डाल, (अररुषः) दान न देने वाले — दूसरों को लाभ न पहुँचाने वाले (परस्य) शत्रु की (शंसम्) अभिलाषा को (तप) तपा डाल (वसो) हे उत्तम निवासयुक्त ! (चिकितानः) विवेकयुक्त तू (अचित्तान्) हृदयहीन अविवेकी शत्रुओं को (तपः) संतप्त कर दे। (ते) तेरी [तेजोरश्मियाँ] (अजराः) अजर-अमर होती हुई (अयासः) सर्वत्र पहुँचने वाली होती हुई (वि-तिष्ठन्ताम्) तुझ में विशेष रूप से स्थित रहें।

२५. (मृध्राणि) हिंसकों को (घ्नन्) मारता हुआ, (द्विषः) द्वेषियों को (अप-घ्नन्) कुचल फेंकता हुआ, (विश्वहा) सदा (रक्षांसि)

२६. उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र
वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आकीवतः सललूकं चकर्थ
ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ ऋग्. ३-३०-१७

हे वीर ! राक्षस को समूल उखाड़ फेंक, इसकी छाती चीर दे, सिर तोड़ डाल। इस चंचल को जहां कहीं भी पाये मार दे। इस ब्रह्मद्वेषी पर तीक्ष्णधार वज्र का प्रहार कर।

२७. भिन्धि विश्वा अप द्विषः, परिबाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदाभर ॥
ऋग्. ८-४५-४०; अथर्व. २०-४३-१

राक्षसों को (दहन्) दग्ध करता हुआ (अग्ने) हे तेजस्वी वीर ! तू (तिग्मेन) अपने प्रखर तेज से (दीदिहि) चमक।

२६. (इन्द्र) हे वीर ! (रक्षः) राक्षस को (सहमूलं) जड़-समेत (उद्वृह) उखाड़ फेंक; इसके (मध्यम्) मध्य भाग को-छाती को (वृश्च) चीर डाल, (अग्रं) अग्रभाग को—सिर को (प्रतिशृणीहि) तोड़ दे। इस (सललूकम्) चंचल को (आकीवतः) जिस किसी भी स्थान से—जहाँ कहीं भी वह हो वहीं से पकड़ कर (चकर्थ) मार दे, इस (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्मद्वेषी पर (तपुषिम्) तेज़ (हेतिम्) वज्र को (अस्य) फेंक।

२७. (विश्वाः द्विषः) सब द्वेषियों को (अपभिन्धि) छिन्न-भिन्न कर दे, (परिबाधः) चारों ओर से आकर बाधा डालने वाले (मृधः)

समस्त द्वेषियों को छिन्न-भिन्न कर दे, बाधा डालने वाले सब हिंसकों को कुचल दे। वह अलौकिक ऐश्वर्य पा जिसकी संसार स्पृहा करता है।

२८. अतिधावताऽतिसरा इन्द्रस्य वचसा हत।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन्मा मोचि,
प्राणमस्यापि नह्यत॥ अथर्व. ४-८-४

दौड़ पड़ो हे अग्रगामी वीरो! अपने नायक की आज्ञा पाते ही शत्रु पर जा टूटो। राक्षस को पकड़ कर ऐसे झँझोर डालो, जैसे भेड़िया भेड़ को। देखो, वह जीवित बच कर न भागने पाये। इसके प्राणों को वश कर लो।

२९. अपघ्नन्तो अराव्णः, पवमानाः स्वर्दृशः।
योनावृतस्य सीदत॥ ऋग्. ९-१३-९

हिंसकों को (जहि) मार दे। (तत् स्पार्हं वसु) उस [अलौकिक] स्पृहणीय ऐश्वर्य को (आभर) पा।

२८. (अतिसराः) हे अग्रगामी वीरो! (अतिधावत) दौड़ पड़ो, (इन्द्रस्य) अपने नायक के (वचसा) वचन से—आदेश से (हत) दुश्मन पर टूट-पड़ो। उस शत्रु को (मथ्नीत) मथ डालो (इव) जैसे (वृकः) भेड़िया (अविम्) भेड़ को। (स वः) तुम्हारा वह शत्रु (जीवन्) जिन्दा (मा मोचि) न छूटने पावे (अस्य) इसके (प्राणम्) प्राण को (अपि नह्यत) बाँध लो—वश में कर लो।

आततायियों का विध्वंस करते हुये, पवित्रता का प्रचार करते हुये, ज्योति का दर्शन करते हुये तुम सत्य के मन्दिर में आसीन होवो।

३०. इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः, कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥ ऋग्. ९-६३-५

क्रियाशील बनो, प्रभु-महिमा का प्रचार करो, विश्व को आर्य बनाओ, राक्षसों का संहार करो।

३१. मरुतो यद्ध वो बलं, जनाँ अचुच्यवीतन।
गिरीँरचुच्यवीतन॥ ऋग्. १-३७-१२

हे वीरो! जो तुम्हारे अन्दर बल है, उससे तुम राक्षस-जनों को डिगा दो, पहाड़ों तक को हिला दो।

३२. सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां
समुद्रस्येव महिमा गभीरः।

---

२९. (अराव्णः) आततायियों को (अपघ्नन्तः) मारते हुए, (पवमानाः) पवित्रता लाते हुए, (स्वर्दृशः) ज्योति का दर्शन करते हुए, (ऋतस्य) सत्य के (योनौ) मन्दिर में (सीदत) बैठो।

३०. (इन्द्रं वर्धन्तः) प्रभु को बढ़ाने वाले, (अप्तुरः) क्रियाशील, (विश्वम् आर्यं कृण्वन्तः) विश्व को आर्य बनाने वाले, और (अराव्णः अपघ्नन्तः) आततायियों का संहार करने वाले [बनो]।

३१. (मरुतः) हे वीरो! (यद् ह) जो (वः) तुम्हारा (बलम्) बल है उससे (जनान्) राक्षस-जनों को (अचुच्यवीतन) च्युत कर दो-डिगा

वातस्येव प्रजवो नान्येन

स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ऋग्. ७-३३-८

आदित्य-मण्डल के समान तुम्हारी ज्योति है, समुद्र के समान गम्भीर तुम्हारी महिमा है, वायु के समान तुम्हारा वेग है। हे वीरो! तुम्हारे इन गुणों का कौन पार पा सकता है?

३३. युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी

युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।

युष्मोतः सम्राडुत हन्ति वृत्रं

प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम् ऋग्. ७-५८-४

जिसकी रक्षा में तुम तत्पर होते हो वह ब्राह्मण सैंकड़ों का अधिराज हो जाता है। जिसकी रक्षा में तुम तत्पर होते हो वह योद्धा सहस्रों का अधिराज हो जाता है। जिसके तुम रक्षक होते

दो (गिरीन्) पहाड़ों को (अचुच्यवीतन) च्युत कर दो-हिला दो।

३२. (सूर्यस्य चक्षथः इव) सूर्य-मण्डल के समान (एषां [वः] ज्योतिः) इन तुम वीरों की ज्योति है, (समुद्रस्य इव) समुद्र के समान (महिमा गभीरः) महिमा गम्भीर है, (वातस्य इव) वायु के समान (प्रजवः) वेग है। (वसिष्ठाः) हे वीरो! (वः स्तोमः) तुम्हारी यह स्तुति (अन्येन अन्वेतवे न) किसी दूसरे से अनुसरण की जा सकने योग्य नहीं है।

३३. (मरुतः) हे वीरो! (युष्मोतः) तुम से रक्षित (विप्रः) ब्राह्मण

हो वह सम्राट् शत्रु को मार गिराता है। हे शत्रु-प्रकम्पक वीरो ! तुम्हारा यह लाभकारी रक्षक रूप हमारे लिये भी प्रकट हो।

३४. अक्ष्यौ निविध्य हृदयं निविध्य
जिह्वां नितृन्धि प्र दतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघास-
अग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥ अथर्व. ५-२९-४

हे वीर ! राक्षस की दोनों आँखें फोड़ दे, हृदय चीर दे, जीभ काट डाल, दाँत तोड़ दे। जिस किसी भी पिशाच ने तेरे इस भाई को अपना ग्रास बनाया है उसे तू पूर्णतया विनष्ट कर दे।

(शतस्वी) सैंकड़ों का स्वामी हो जाता है, (युष्मोतः) तुम से रक्षित (अर्वा) आक्रमणकारी (सहुरिः) सहनशील योद्धा (सहस्री) सहस्रों का स्वामी हो जाता है, (उत) और (युष्मोतः) तुम से रक्षित (सम्राट्) राजा (वृत्रम्) शत्रु को (हन्ति) मार गिराता है। (धूतयः) हे शत्रु-प्रकम्पक वीरो ! (वः) तुम्हारा (तद्) वह (देष्णम्) लाभदायी रूप (अस्तु) हमारे लिए भी प्रकट हो।

३४. (अक्ष्यौ) दोनों आँखें (निविध्य) फोड़ दे, (हृदयं निविध्य) हृदय चीर दे, (जिह्वां नितृन्धि) जीभ काट डाल, (दतः) दाँतों को (प्रमृणीहि) तोड़ दे, (अस्य) इसे (यतमः पिशाचः) जिस भी पिशाच ने (जघास) हड़पा है (यविष्ठ अग्ने) हे युवा वीर ! (तम्) उसे (प्रति-शृणीहि) तू नष्ट कर दे।

३५. सनादग्ने मृणसि यातुधानान्
न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो
मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥

अथर्व. ५-२९-११;८-३-१८

सदा ही, हे वीर ! तू राक्षसों का संहार करता आया है । राक्षस तुझे युद्धों में जीत नहीं सके । अपनी इस परम्परा को स्थिर रख । उन मार-काट मचाने वाले मांसभक्षी राक्षसों को भस्म कर दे । देख वे तेरी चमचमाती तलवार से बचने न पायें ।

३६. यत्रेदानीं पश्यसि जातवेद-
स्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद् वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं
तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ऋग्. १०-८७-६

---

३५. (अग्ने) हे अग्रणी वीर ! तू (सनात्) सदा से (यातुधानान्) राक्षसों को (मृणसि) कुचलता आया है, (त्वा) तुझे (रक्षांसि) राक्षस (पृतनासु) युद्धों में (न जिग्युः) कभी नहीं जीत सके । तू (सहमूरान्) मारक स्वभाव वाले (क्रव्यादः) मांसभक्षी राक्षसों को (अनुदह) भस्म कर दे । वे (ते) तेरी (दैव्यायाः हेत्याः) चमचमाती तलवार से (मा मुक्षत) न छूटने पावें ।

३६. (जातवेदः अग्ने) हे ज्ञानी वीर ! [राक्षस को] (यत्र) जहां

हे वीर ! राक्षस को खड़े, चलते-फिरते, आकाश में उड़ते-जहाँ कहीं भी तू देख पाये तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दे।

३७. यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने
यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम्।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद् दभ्रमेतु
नि ष हीयतां तन्वा तना च ॥ ऋग्. ७-१०४-१०

देख, जो हमारे अन्न-रस को दूषित करना चाहता है; हमारे घोड़ों का, गौओं का, हमारे शरीरों का खून चूसना चाहता है, वह शत्रु, चोर, डाकू, लुटेरा नष्ट हो जाये; अपने शरीर और समस्त समृद्धि के साथ धूल में मिल जाये।

३८. प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति।
यातुधानस्य रक्षसो बलं विरुज वीर्यम् ॥
ऋग्. १०-८७-२५

भी (इदानीम्) अब (पश्यसि) तू देखे, (तिष्ठन्तम्) खड़े हुए (उत वा) अथवा (चरन्तम्) चलते-फिरते हुए (यद्वा) अथवा (अन्तरिक्षे) आकाश में (पथिभिः) रास्तों से (पतन्तम्) उड़ते हुए, तो (तम्) उसको (अस्ता) बाण चलाने वाला (शिशानः) तेजस्वी तू (शर्वा) हिंसक बाण से (विध्य) घायल कर दे।

३७. (अग्ने) हे अग्नितुल्य वीर ! (यः) जो (नः पित्वः) हमारे अन्न के (रसम्) रस को (दिप्सति) दूषित करना चाहता है, (यः अश्वानाम्) जो घोड़ों का (यः गवाम्) जो गौओं का (यः तनूनाम्) जो हमारे

राक्षस ने अपने जिस प्रभाव से चारों ओर त्राहि-त्राहि मचा रखी है उसके उस प्रभाव को अपने अदम्य प्रभाव से तू दबा दे। हे वीर ! उस पर-पीड़क राक्षस के बल और पराक्रम को तू चूर-चूर कर दे।

३९. अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥

ऋग्० १०-२२-८

हे शत्रुहन्ता वीर ! जो अकर्मण्य, दस्यु, नास्तिक, पापव्रती नर-पिशाच हमें सताने आये, उसके हथियार को तू तोड़ डाल।

शरीरों का [रसं दिप्सति] खून चूसना चाहता है (स) वह (रिपुः) शत्रु (स्तेनः) चोर (स्तेयकृत्) लुटेरा (दभ्रम् एतु) विनाश को प्राप्त हो (तन्वा) शरीर से (तना च) और समृद्धि से (निहीयताम्) हीन हो जाये।

३८. (अग्ने) हे अग्रणी वीर ! (विश्वतः) चारों ओर (हरसा) अपने तेज और प्रभाव से (हरः) राक्षस के तेज और प्रभाव को (प्रतिशृणीहि) नष्ट कर दे। (यातुधानस्य रक्षसः) पीड़क राक्षस के (बलम्) बल को, और (वीर्यम्) पराक्रम को (वि-रुज) चूर-चूर कर दें।

३९. जो (अकर्मा) अकर्मण्य (दस्युः) दस्यु (अमन्तुः) नास्तिक (अन्यव्रतः) पापव्रती (अमानुषः) नर-पिशाच (नः अभि) हमें अभिभूत करे, सताये (अमित्रहन्) हे शत्रुहन्ता ! (त्वम्) तू (तस्य दासस्य) उस दस्यु के, घातक के (वधः) हथियार को (दम्भय) तोड़ डाल।

मत सोच कि तू अकेला है, देख—

४०. एक एवाऽग्निर्बहुधा समिद्धः
एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभाति-
एकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥ ऋग्. ८-५८-२

"अकेली आग कितनी चमक से चमकती है ? अकेला सूर्य विश्व को प्रकाशित करता है । अकेली उषा सब दृश्यमान वस्तुओं को चमका रही है । अकेला परमेश्वर सर्वत्र व्यापा हुआ है ।" तू भी अकेला क्या नहीं कर सकता ?

४१. नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णु-
र्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां
विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ ऋग्. ६-२५-५

---

४०. (एकः एव) एक ही (अग्निः) अग्नि (बहुधा) बहुत प्रकार से (समिद्धः) चमकता है, (एकः सूर्यः) एक ही सूर्य (विश्वम् अनु) सारे विश्व के लिए (प्रभूतः) समर्थ है । (एका एव उषाः) एक ही उषा (इदं सर्वम्) इस सब को (विभाति) चमकाती है, (एकं वै) एक ही [परमेश्वर] (इदं सर्वम्) इस सब में (विबभूव) व्यापक है ।

४१. (नहि) न ही (त्वा) तुझ से (शूरः) कोई शूरवीर (न तुरः) न कोई फुर्तीला (न धृष्णुः) न कोई विजेता (न त्वा) न तुझ से (मन्यमानः योधः) कोई अभिमानी योद्धा (युयोध) युद्ध कर सकता

बड़े से बड़ा शूरवीर, बड़े से बड़ा फुर्तीला, बड़े से बड़ा विजेता, बड़े से बड़ा अभिमानी योद्धा युद्ध में तेरी बराबरी नहीं कर सकता। किसी में भी तुझे परास्त करने की शक्ति नहीं है। तू सबको परास्त कर सकता है।

४२. न द्योणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं
न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन
यदाशुभिः पतसि योजना पुरु॥ ऋग्. २-१६-३

तेरा बल भूमि-आकाश से हार नहीं मानेगा; तेरा रथ समुद्र और पहाड़ों से हार नहीं मानेगा। कोई भी तेरे वज्र की टक्कर नहीं ले सकेगा, जब कि तेज़ वाहन पर आरूढ़ होकर दिग्विजय करता हुआ तू कोसों दूर उड़ा चला जायेगा।

है। (इन्द्र) हे वीर ! (एषाम्) इनमें से (नकिः) कोई भी नहीं (त्वा प्रत्यस्ता) तुझे हरा सकता है। तू (मह्ना) अपनी महिमा से (विश्वा जातानि) सब उत्पन्न [शत्रुओं] को (अभ्यसि) हरा सकता है।

४२. (ते इन्द्रियं) तेरा बल (द्योणीभ्याम्) भूमि और आकाश से (परिभ्वे न) पराजित नहीं होगा। (इन्द्र) हे वीर ! (ते रथः) तेरा रथ (समुद्रैः पर्वतैः) समुद्र और पहाड़ों से [परिभ्वे न] पराजित नहीं होगा। (ते वज्रम्) तेरे वज्र का (कश्चन) कोई भी (न अन्वश्नोति) मुकाबला नहीं कर सकेगा। (यत्) जब तू (आशुभिः)

४३. सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे
रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वारुरुध्रे
वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥ ऋग्. १०-८४-३

हे मन्युमूर्ति वीर! गर्वीले शत्रु को परास्त कर दे; शत्रु दल को तोड़ता-फोड़ता, मारता-कुचलता हुआ आगे बढ़। तेरे उग्र बल को कोई नहीं रोक सकता; तू अकेला ही सब शत्रुओं को वश करने में समर्थ है।

४४. पदा पणीँरराधसो, निबाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ ऋग्. ८-६४-२

पाद-प्रहार से विनाशकारी लुटेरों को नीचे गिरा दे। हे वीर! तू महान् है, कोई तेरी बराबरी नहीं कर सकता।

शीघ्रगामी वाहनों द्वारा (पुरु योजना) अनेकों योजन दूर तक (पतसि) उड़ा चला जायेगा।

४३. (मन्यो) हे मन्युमूर्ति वीर! (अस्मे) हमारे हितार्थ (अभिमातिम्) अभिमानी शत्रु को (सहस्व) पछाड़ दे; तू (शत्रून्) शत्रुओं को (रुजन्) तोड़ता-फोड़ता (मृणन्) मारता (प्रमृणन्) कुचलता (प्रेहि) आगे बढ़। (ते) तेरे (उग्रम्) उग्र (पाजः) बल को (न नु) कोई नहीं (आरुरुध्रे) रोक सकता है। (एकज) हे अकेले वीर! (वशी) वश करने वाला (त्वम्) अकेला तू (वशं नयसे) [सब शत्रुओं को] वश कर लेता है।

४४. (पदा) पैर से (अराधसः पणीन्) विनाशकारी लुटेरों को

४५. पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं, पिशाचिमिन्द्र संमृण ।
सर्वं रक्षो निवर्हय ऋग्. १-१३३-५

पिशाच कैसा ही तुझे अपना लाल-पीला चेहरा दिखा कर भय दिखाये, कैसा ही वह ज़ोर का दहाड़े, मत पर्वाह कर। उसे कुचल डाल। सब राक्षसों का मूलोच्छेद कर दे।

४६. सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा
व्याघ्रप्रतीको ऽवबाधस्य शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां
छत्रूयतामाखिदा भोजनानि ॥ अथर्व. ४-२२-७

शेर होकर शत्रु-प्रजाओं को हड़प जा, वाघ बन कर शत्रुओं को भगा दे। तू अद्वितीय वीर है, वीरों का मित्र है, सर्वविजयी है। जो तुझ से शत्रुता करें उन का भोजन छीन ले।

(नि बाधस्व) नीचे गिरा दे । (महान् असि) तू महान् है, (कश्चन) कोई भी (त्वा प्रति नहि) तेरे मुकाबले का नहीं है।

४५. (पिशङ्गभृष्टिम्) क्रोध से लाल हुए २ (अम्भृणम्) बड़े भारी-ज़ोर से दहाड़ने वाले (पिशाचिम्) पिशाच को (इन्द्र) हे वीर ! (संमृण) अच्छी तरह कुचल डाल, (सर्वं रक्षः) सब राक्षसों को (निवर्हय) निःशेष रूप से विनष्ट कर दे।

४६. (सिंहप्रतीकः) सिंह-सदृश हो कर (सर्वाः विशः) सब शत्रु प्रजाओं को (अद्धि) हड़प जा। (व्याघ्रप्रतीकः) बाघ-सदृश हो कर (शत्रून् अवबाधस्व) शत्रुओं को दूर भगा दे । (एकवृषः) तू अद्वि-

४७ अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भिया-

ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ऋग्. १-८०-१४

हे विजली की तरह गर्जने वाले! तेरे गर्जन को सुन कर स्थावर-जंगम काँप उठेंगे। तेरे मन्यु को देख कर सूर्य तक भय से थर्रा उठेगा। तू सच्चा वीर है, स्वराज्य का आराधक बन।

४८. यजस्व वीर प्रविहि मनायतो

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।

हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि

ब्रह्मणस्पते रव आ वृणीमहे ॥ ऋग्. ९-२६-२

यज्ञ कर, हे वीर! मनोवेग से आ टूटने वाले विघ्नों पर विजय पा। पापियों की हिंसा करते हुए मन में भद्र भावना ला।

तीय वीर है, (इन्द्रसखा) वीरों का मित्र है (जिगीवान्) विजयी है। (शत्रूयताम्) शत्रुता करने वालों के (भोजनानि) भोजनों को या रक्षा-साधनों को (आखिद्) छीन ले।

४७. (अद्रिवः) हे बिजली की तरह गर्जने वाले! (ते अभिष्टने) तेरा सिंहनाद होने पर (यत् स्थाः जगत् च) जो स्थावर और जंगम है वह (रेजते) काँप उठता है। (त्वष्टा चित्) सूर्य भी (तव मन्यवे) तेरे मन्यु के आगे (इन्द्र) हे वीर! (भिया) भय से (वेविज्यते) थर्रा उठता है। (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) तू स्वराज्य का आराधक बन।

४८. (यजस्व) यज्ञ कर (वीर) हे वीर! (प्रविहि) जीत ले (मनायतः) मनोवेग से आक्रमण करने वालों को। (मनः भद्रं

उत्सर्ग कर, जिस से तेरा यश चमके । आ, हम सब महान् प्रभु की रक्षा को अपनायें।

४९. अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति,
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।

ऋग्. १०-१३४-२

दुःखद रूप से मार-काट करने वाले राक्षस के बल को तू नीचा दिखा दे। पैरों से रौंद दे उसे जो हम पर अपना शासन जमाना चाहता है। याद रख, तुझे देवीतुल्य माता ने जन्म दिया है, तुझे श्रेष्ठ माता ने जन्म दिया है।

कृणुष्व) मन को भद्र बना (वृत्रतूर्ये) दुष्टों की हिंसा में । (हविः कृणुष्व) हवि दे—उत्सर्ग कर, (यथा) जिस से तू (सुभगः असति) यशस्वी हो । आ, (ब्रह्मणस्पतेः) महान् प्रभु की (अवः) रक्षा को (आ वृणीमहे) अपनायें।

४९. हे वीर ! (दुर्हणायतः) दुःखद रूप से मार-काट करने वाले (मर्तस्य) मनुष्य के (स्थिरम्) बल को (अव तनुहि स्म) नीचा कर दे । (अधस्पदम्) पैरों तले (तम्) उसे (कृधि) कर दे (यः) जो (अस्मान्) हम पर (आदिदेशति) शासन जमाता है। तुझे (देवी जनित्री) देवी तुल्य माता ने (अजीजनत्) पैदा किया है,(भद्रा जनित्री) श्रेष्ठ माता ने (अजीजनत्) पैदा किया है।

वीरता की तरंग में

बाहू मे बल मिन्द्रियं,
हस्तौ मे कर्म वीर्यम्

मेरी भुजाओं में इन्द्र का बल है, मेरे
हाथों में कर्म और सामर्थ्य है।

यजुः २०-७

१. प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो,

निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः ।

उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ यजुः १-७

राक्षसों को मैंने दग्ध कर दिया है, पूर्णतया दग्ध कर दिया है। शत्रुओं को मैंने दग्ध कर दिया है, पूर्णतया दग्ध कर दिया है। कोई राक्षस और कोई शत्रु बाकी नहीं छूटा है। आहा, अब देखो, मैं स्वच्छन्द आकाश में विहार कर रहा हूँ।

२. पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्,

अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।

दिवो नाकस्य पृष्ठात,

स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ यजुः १७-६७

---

१. (प्रत्युष्टम्) दग्ध कर दिया गया है (रक्षः) राक्षस, (प्रत्युष्टाः) दग्ध कर दिये गये हैं (अरातयः) शत्रु । (निष्टप्तम्) पूर्णतया दग्ध कर दिया गया है (रक्षः) राक्षस, (निष्टप्ताः) पूर्णतया दग्ध कर दिये गये हैं (अरातयः) शत्रु । (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम् अनु) अन्तरिक्ष में (एमि) विहार कर रहा हूँ।

२. (पृथिव्याः) पृथ्वी से (अहम्) मैं (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (आरुहम्) चढ़ गया हूँ, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (दिवम्) द्यु-लोक में (आरुहम्) चढ़ गया हूँ । (नाकस्य पृष्ठात्) स्वर्ग के पृष्ठ (दिवः) द्यु लोक से (स्वर्ज्योतिः) आनन्द की ज्योति को (अगाम) प्राप्त कर

एक दिन था जब कि मैं नीचे भूमि पर ही खड़ा हुआ था। तब निःसन्देह राक्षसों के आघात-प्रतिघात से मैं विचलित हो सकता था। किन्तु आज मेरी वह अवस्था नहीं है, मैं ऊँचा उठ गया हूँ। "भूमि से उठ कर अन्तरिक्ष में और अन्तरिक्ष से भी उठ कर द्यु-लोक में पहुँच चुका हूँ। इन उन्नति की सीढ़ियों को क्रमशः पार कर के मैं उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ गया हूँ। मैंने स्वर्गीय ज्योति के दर्शन कर लिये हैं।" आज किस में शक्ति है जो मेरे सामने आँख उठा कर भी देख सके।

३. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा
घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानो-
ऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ यजुः १८-६६

मैं आग हूँ—दहकता हुआ अंगारा हूँ, स्वभाव से ही जागरूक हूँ। मेरी आँख में तेज है, मेरे मुख में अमृत है। मैं सूर्य हूँ, तीन

लिया है (अहम्) मैंने।

३. (अग्निः अस्मि) मैं आग हूँ (जन्मना जातवेदाः) जन्म से—स्वभाव से—जागरूक हूँ। (घृतं मे चक्षुः) तेजस्विनी है मेरी आँख (अमृतं मे आसन्) अमृत है मेरे मुख में। (अर्कः) सूर्य हूँ; (त्रिधातुः) [शरीर, मन, आत्मा के] तीन तेजों से युक्त हूँ, (रजसः विमानः) सारे लोक को—भूमण्डल को—माप लेने वाला हूँ; (अजस्रः) अक्षय हूँ, (घर्मः) प्रज्वलित यज्ञकुण्ड हूँ; (हविः अस्मि नाम) आहुति हूँ— शुभ कार्य में अपनी बलि देने वाला हूँ।

तेजों से युक्त हूँ सारे भूमण्डल को अपने कदमों से माप लेने वाला हूँ, अक्षय हूँ, जलता हुआ यज्ञकुण्ड हूँ, आहुति हूँ।

४. शिरो मे श्रीर्यशो मुखं, त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतं, सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥

यजुः २०-५

मेरे सिर में बड़े बड़े ज्ञान-विज्ञान का ऐश्वर्य भरा है, चेहरे पर यशस्विता छाई है, केश और श्मश्रुओं से दीप्ति फूटी पड़ रही है। मेरा प्राण-राजा अमर है, मेरी आँख सम्राट् के तुल्य है, मेरा श्रोत्र विराट् शक्ति से सम्पन्न है।

५. जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो, मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदा अंगुली-रङ्गानि मित्रं मे सहः ॥

यजुः २०-६

---

४. मे (शिरः) मेरा सिर (श्रीः) साक्षात् ऐश्वर्य है, (मुखम्) चेहरा (यशः) साक्षात् यश है, (श्मश्रूणि) मूंछें (केशाः च) और केश (त्विषिः) दीप्ति के अवतार हैं। (मे प्राणः राजा) मेरा प्राण-राजा (अमृतम्) अमर है, (चक्षुः) आँख (सम्राट्) सम्राट् तुल्य है, (श्रोत्रम्) कान (विराट्) बड़ी शक्तिवाला है।

५. (मे जिह्वा) मेरी जिह्वा (भद्रम्) भद्र है, (वाक्) वाक्शक्ति (महः) महान् है, (मनः) मन (मन्युः) मन्युयुक्त है, (भामः) दीप्ति (स्वराट्) स्वतः दमकती हुई है। (अंगुलीः) अंगुलियां, और (अङ्गानि) अन्य सब अङ्ग (मोदाः प्रमोदाः) मोद-प्रमोद-युक्त हैं। (सहः) साहस (मे मित्रम्) मेरा मित्र है।

मेरी जिह्वा भद्रवादिनी है, वाक्‌शक्ति महान् है, मन में मन्यु भरा है, दीप्ति देखने ही लायक है। मेरे शरीर की एक-एक अंगुलि, शरीर का एक-एक अंग मोद-प्रमोद से नाच रहा है, साहस मेरा मित्र है।

६. बाहू मे बलमिन्द्रियं, हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम॥ यजुः २०-७

मेरी भुजाओं में इन्द्र का-सा बल है, हाथों में कर्म और सामर्थ्य है। मेरा आत्मा दुःखियों के कष्ट को दूर करने वाला है, मेरी छाती चोटों को सहने वाली है।

७. मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः।
घर्मस्त्रिशुग् विराजति, विराजा ज्योतिषा सह,
ब्रह्मणा तेजसा सह॥ यजुः ३८-२७

---

६. (मे बाहू) मेरी भुजायें (इन्द्रियं बलम्) साक्षात् इन्द्र का बल हैं, (मे हस्तौ) मेरे दोनों हाथ (कर्म वीर्यम्) साक्षात् कर्म और सामर्थ्य की मूर्ति हैं। (आत्मा) मेरा आत्मा (क्षत्रम्) क्षत्र है—दुःखियों को कष्टों से बचाने वाला है, (मम उरः) मेरी छाती भी (क्षत्रम्) क्षत्र है—स्वयं चोटें सहकर दूसरों को चोट से बचाने वाली है।

७. (मयि) मुझ में (त्यद्) वह प्रसिद्ध (बृहत्) बड़ा भारी (इन्द्रियम्) इन्द्र का बल है, (मयि) मुझ में (दक्षः) उत्साह है, (मयि) मुझ में (क्रतुः) संकल्प या कर्म है। मुझ में (त्रिशुग् घर्मः) [शरीर, मन, आत्मा के] तीन तेजों से युक्त दीप्ति (विराजति) विराज-

मेरे अन्दर बड़ा भारी इन्द्र का बल है, मेरे अन्दर उत्साह है, मेरे अन्दर संकल्प-बल है। शरीर-मन-आत्मा तीनों का तेज मेरे अन्दर दमक रहा है। मैं विराट् ज्योति से भासमान हूँ, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हूँ।

८. अहमिद्धि पितुष्परि, मेधामृतस्य जग्रभ।
अहं सूर्य इवाजनि॥ अथर्व. २०-११५-१

मैंने पिता प्रभु से सत्यमयी मेधा को पा लिया है। मैं साक्षात् सूर्य हो गया हूँ।

९. अवधीत् कामो मम ये सपत्ना
उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम्।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो
मह्यं षडुर्वी घृतमावहन्तु॥ अथर्व. ९-२-११

मेरे संकल्प-बल ने सब शत्रुओं को, सब बाधाओं को चुन चुन कर मार दिया है। मेरे आगे विशाल लोक खुल गया है,

---

मान है (विराजा ज्योतिषा सह) विराट् ज्योति के साथ और (ब्रह्मणा तेजसा सह) ब्रह्म-तेज के साथ।

८. (अहम् इत् हि) मैंने तो (पितुः) पिता प्रभु से (ऋतस्य मेधाम्) सत्य की बुद्धि को (परि जग्रभ) ग्रहण कर लिया है। (अहम्) मैं (सूर्यः इव) सूर्यवत् (अजनि) हो गया हूँ।

९. (अवधीत्) मार दिया है (कामः) संकल्प बल ने (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं उन्हें। (उरुं लोकम्) विशाल लोक को

समृद्धि के द्वार खुल गये हैं । चारों दिशायें मेरे आगे झुक जायें, छहों दिशायें मुझे उपहार प्रदान करें ।

१०. नाहमतो निरया दुर्गहैतत,
तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि,
युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ ऋग्. १८-४-२

अरे, मैं इस टेढ़े-मेढ़े, घुमा-फिरा कर बड़ी देर में लक्ष्य तक पहुँचाने वाले कुटिल रास्ते को नहीं पकड़ूँगा । यह रास्ता तो उन के लिये है जिन में सीधे किन्तु तीक्ष्णधार रास्ते पर चलने का साहस नहीं है । मैं तो सीधा रास्ता काट कर निकल जाऊँगा । मुझे इधर-उधर भूल-भुलैयों में समय नष्ट करने का अवकाश कहाँ है ? मेरे आगे अनेकों महान् कार्य पड़े हैं । समय थोड़ा है, कार्य अधिक है । तिस पर यह कि पग-पग पर संघर्ष है । इस बाधा से लड़ना है, उस बाधा से भिड़ना है और रास्ता चीर कर आगे बढ़ना है । किसी से लड़ना है, किसी से पूछ ताछ करने के लिये बीच में रुकना है ।

(अकरत्) खोल दिया है (मह्यम्) मेरे लिये, और (एधतुम्) समृद्धि को भी । (मह्यं नमन्ताम्) मेरे आगे झुक जायें (प्रदिशः चतस्रः) दिशायें चारों । (मह्यम्) मेरे लिये (षड् उर्वीः) छहों विशाल दिशायें (घृतम् आवहन्तु) घृत प्रदान करें—उपहार लायें ।

१०. (अहम्) मैं (अतः) इधर से (न निरयाः) नहीं निकालूँगा, (एतत्) यह रास्ता (दुर्गहा) मेरे लिये मुश्किल से ही पकड़ने योग्य

११. अहमस्मि सपत्नहा-इन्द्र इवारिष्टो अक्षतः।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः॥
ऋग. १०-१६६-२

मैं शत्रु-हन्ता हूँ, इन्द्र की तरह अविनाशी और अक्षत हूँ। इन सब शत्रुओं को पल-भर में पैरों तले रौंद दूँगा।

१२. अभिभूरहमागमं, विश्वकर्मेण धाम्ना।
आवश्चित्तमा वो व्रत-मा वोऽहं समितिं ददे॥
ऋग. १०-१६६-४

ऐ मुझ से शत्रुता करने वालो, सावधान! देखो, अपने सर्वकार्यक्षम तेज के साथ मैं आ पहुँचा हूँ। तुमने जो मेरे विनाश के बड़े-बड़े मनसूबे बाँध रखे हैं, जो बड़े-बड़े षड्यन्त्र

है। मैं तो (तिरश्चता) सीधे चीरते हुए (पार्श्वात्) पार्श्व से (निर्गमाणि) निकल जाऊँगा (मे) मेरे लिये (बहूनि) बहुत से (कर्त्वानि) ऐसे करने योग्य काम हैं (अकृता) जिन्हें आज तक किसी ने नहीं किया है। मैं (त्वेन) किसी से (युध्यै) लड़ूँगा (त्वेन) किसी से (संपृच्छै) पूछताछ करूँगा।

११. (अहम्) मैं (सपत्नहा) शत्रु-हन्ता (अस्मि) हूँ, (इन्द्रः इव) इन्द्र की तरह (अरिष्टः) अविनाशी और (अक्षतः) अक्षत हूँ। (इमे सर्वे) ये सब (सपत्नाः) शत्रु (मे पदोः अधः) मेरे पैरों के नीचे (अभिष्ठिताः) कुचले जायेंगे।

१२. (अभिभूः) पराजयकारी (अहम्) मैं (विश्वकर्मेण धाम्ना) सर्वकर्मक्षम तेज के साथ (आगमम्) आ गया हूँ। (वः चित्तम्)

रच रखे हैं, जो संघ-समितियाँ बना रखी हैं, उन सबको अभी मैं अपनी मुट्ठी में किये लेता हूँ।

१३. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा, पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः।
पृथिवीमनु विक्रमेऽहं, पृथिव्यास्तं निर्भजामो,
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥ अथर्व. १०-५-२५

हे मेरे कदम ! तू छोटा नहीं, तू विष्णु का विशाल कदम है, शत्रुहन्ता है, पृथिवी भर में तीक्ष्ण है; तुझ में अग्नि का तेज है। मैं तुझे पृथिवी पर रखूँगा। जो मुझसे शत्रुता मोल लेगा और मैं भी जिस की दुष्टता के कारण जिस से शत्रुता ठानूँगा, उसे मैं पृथिवी पर जहाँ भी पाऊँगा गर्दन पकड़ कर निकाल दूँगा। देख लेना वह जीवित नहीं बचेगा, प्राण उसे छोड़ जायेगा।

तुम्हारे विचार को— इरादों को (आददे) वश में किये लेता हूँ (वः व्रतम्) तुम्हारे कर्म को, तुम्हारी करतूतों को (आददे) वश में किये लेता हूँ, (वः समितिम्) तुम्हारी समिति को—दलबन्दी को (आददे) वश में किये लेता हूँ।

१३. हे मेरे कदम ! (विष्णोः क्रमः असि) तू विष्णु का कदम है, (सपत्नहा) शत्रु-हन्ता है, (पृथिवीसंशितः) पृथिवी भर में तीक्ष्ण है (अग्नितेजाः) अग्नि के समान तेजस्वी है। (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (विक्रमे) कदम रखता हूँ (अहम्) मैं। (पृथिव्याः) पृथिवी से (तं निर्भजामः) उसे निकाल दूँगा (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो मुझ से शत्रुता करता है और (यं वयं द्विष्मः) जिस से मैं भी शत्रुत

१४. अपाम सोममम्मृता अभूम-
अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः
किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ऋग् ८-४८-३

हे सोम ! हमने तुझ अमरता के नुसखे का पान कर लिया हैं, हम अमर होगये हैं । हमने ज्योति पा ली है, हमने देवों को पा लिया है । शत्रु हमारा क्या कर सकता है, हिंसक हमारा क्या बिगाड़ सकता है ?

१५. नहि मे अक्षिपच्चनाऽच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ऋग्. १०-११६-६

करता हूँ । (स मा जीवीत्) वह जवित न रहे, (तम्) उसे (प्राणः जहातु) प्राण छोड़ जाये ।

१४. (अमृत) हे अमरता के नुसखे सोम ! हमने (सोमम्) तुझ सोम को (अपाम) पी लिया है (अमृताः अभूम) हम अमर हो गये हैं । (ज्योतिः) ज्योति को (अगन्म) पा लिया है, (दवान्) देवों को (अवि-दाम) पा लिया है । (नूनम्) निश्चय ही (अरातिः) शत्रु (अस्मान् किं कृणवत्) हमारा क्या कर सकेगा, (मर्त्यस्य) किसी मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा (किमु) हमारा क्या बिगाड़ सकेगी ।

१५. (पञ्च कृष्टयः) पाँचों मनुष्य—धरती भर के सब मनुष्य (मे) मेरे (अक्षिपत् चन) अक्षिपात तक को—पलक झपकाने की छोटी सी क्रिया तक को (नहि अच्छान्त्सुः) नहीं रोक सकते, मैंने (कुवित्) बहुत

मैंने सोमरस का वीरता के अमृतरस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है। मुझमें वह शक्ति आ गई है कि संसार का कोई मनुष्य मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

१६. नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ऋग्. १०-११९-७

मैं तो इतना महान् हो गया हूँ कि ये विशाल द्यावापृथिवी मेरे एक पासे के बराबर भी नहीं हैं। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

१७. अभि द्यां महिना भुवमभीमां पृथिवीं महीम्।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ऋग्. १०-११९-८

निःसन्देह यह आकाश बड़ा महिमाशाली है, पर अपनी महत्ता से मैंने इसे भी पीछे छोड़ दिया है। निःसन्देह यह पृथिवी बड़ी विशाल है, पर अपनी विशालता से मैंने इसे भी परास्त कर दिया है। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

बहुत (सोमस्य) सोमरस का (अपाम्) पान कर लिया है (इति) इस कारण से।

१६. (उभे रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों (मे) मेरे (अन्यं पक्षं चन) एक पासे के भी (प्रति) बराबर (नहि) नहीं हैं.......।

१७. मैंने (महिना) अपनी महिमा से (द्याम्) द्यौ लोक को (अभि भुवम्) पराजित कर दिया है, (इमाम्) इस (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभि भुवम्) पराजित कर दिया है......।

१८. हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ऋग्. १०-११९-९

अरे, मेरे अन्दर तो वह शक्ति आ गई है कि कहो तो इस धरती तक को उठा कर यहाँ रख दूँ, वहाँ रख दूँ, जहाँ कहो वहीं रख दूँ। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

१९. ओषमित् पृथिवीमहं जंघनानीह वेह वा ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ऋग्. १०-११९-१०

मैं पृथिवी को दग्ध करने वाले इस विशाल सूर्य तक को छोटी सी फुटबाल की तरह एक ठोकर से जहाँ कहो वहीं पहुँचा दूँ। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

२०. अहमस्मि महामहो ऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ऋग्. १०-११९-१२

---

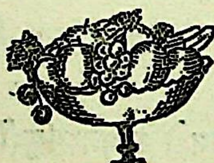
१८. (हन्त) अरे भाई ! (अहम्) मैं (इमां पृथिवीम्) इस पृथिवी को (इह वा इह वा) यहां या यहां [जहां बताओ वहां] (निदधानि) उठा कर धर दूँ।......

१९. (अहम्) मैं (पृथिवीम् ओषम् इत्) पृथ्वी के दाहक सूर्य तक को (इह वा इह वा) यहां या यहां [जहां बताओ वहां] (जङ्घनानि) प्रहार करके पहुँचा दूँ......।

अरे, मैं तो आकाश में उदित साक्षात् महातेजस्वी सूर्य हो गया हूँ। मैंने वीरता के रस का पान पर लिया है, वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

मैं

वीर हूँ ! वीर हूँ !! वीर हूँ !!!



२०. (अहम्) मैं तो (अभिनभ्यम्) आकाश में (उदीषितः) उदित हुआ २ (महामहः) महातेजस्वी सूर्य (अस्मि) हो गया हूँ; मैंने (कुवित्) बहुत २ (सोमस्य) सोमरस का (अपाम्) पान कर लिया है (इति) इस कारण से।

॥ ओ३म् ॥

मन्त्र–सूची
